श्री धन्वन्तरयेनमः

द्रव्यसंग्रह विज्ञान

—:o:—

लेखकका कथन

भारतीय पदार्थ विज्ञानके प्रथम खण्डमें प्रमा, प्रमेय, प्रमाण आदि का वर्णन हुआ है। दूसरे भागमे पदार्थका विवेचन किया गया है। उसमें पदार्थ शब्दका भावात्मक अर्थ लेकर किसी उपस्थित वस्तुके सज्ञाकरणका पदार्थत्व रूपमे विवेचन है। अर्थात जिसमें द्रव्यत्व हो, गुण, कर्म, जाति सामान्य और विशेषता हो तथा उसका संगठन समवाय कारणके साथ हुआ हो उस पदार्थकी विवेचना है। इस तृतीय भागमे "द्रव्यसग्रह विज्ञानका" विवेचन किया गया है। सामान्य व्यवहारमे पदार्थ और द्रव्यके व्यावहारिक अर्थमें विशेष भेद नही माना जाता किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिसे उसमे प्रत्यक्ष भेद है। द्रव्य पदार्थके छः भावोमेसे पहला और मुख्य है। एक प्रकारसे यह द्रव्य विवेचन आयुर्वेदविज्ञानका शास्त्रीय रहस्य है, आधार है। यही नही सारी सृष्टिका भी यही आधार है। भारतीय दर्शनकी गम्भीरता और विचार प्रवणताका सूचक है। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी नामक पञ्चमहाभूत और आत्मा, मन, काल और दिक मिलकर ६ द्रव्य समूह हैं। इन्हीका इसमें विवेचन है। शरीरकी उत्पत्ति, शारीरिक अवयवोंकी विज्ञान सम्मत पूर्ति और जीवन चर्या के सारे कार्य कलाप इन्ही पर अवलम्बित हैं। हमारी इन्द्रिया और इन्द्रियोंके व्यापारका ज्ञान इस द्रव्यविज्ञानके जानने पर निर्भर

करता है। यही वयो सृष्टिके द्रव्योकी रचना उनमें रस-वीर्य-विपाक और प्रभावकी स्थिति तथा शरीर पर होने वाले उनके प्रभावका रहस्यज्ञान भी इसीके आधार पर हो सकता है। इस प्रकार शरीरकी रक्षा, शरीरकी क्रियाओंकी पूर्ति जब इसीके ज्ञानके आधार पर चलती है तब द्रव्य प्रभावके कारण द्रव्योपयोगकी विषम क्रियासे शरीर पर विकृत और विरुद्ध प्रभाव भी पड सकता है और उस विकृतिसे शारीरिक रोगोंकी सम्भावना भी होती है। इस प्रकार यह द्रव्यविज्ञान सृष्टिके व्यवहार और शरीर परिचालनके रहस्योका आधार है। अतएव बहुत ही महत्व पूर्ण और अनिवार्य आवश्यक जानकारीका विज्ञान है।

हमारे शरीरका पोषण आहारके द्वारा होता है। आहारकी सामग्री द्रव्यो द्वारा प्राप्त होती है। द्रव्योका आस्वाद रसनेन्द्रिय द्वारा होता है। रसनेन्द्रियकी रचना पंचमहाभूतोंके आधार पर और रस-ज्ञान मन और आत्माके सहारे होता है। इस प्रकार आहार द्रव्यो की परीक्षा भी द्रव्यविज्ञानके आधार पर ही सम्भवित है। यह दर्शन ज्ञान हमारी जिज्ञासावृत्तिको उत्तेजित करता है। स्वभावतः बाल्य-कालसे ही मनुष्य अपने आस पासके द्रव्योंको देख उनके विषयमें जानना चाहता है और यदि उपयोगी हो तो अपने हितके लिये उनका व्यवहार करना चाहता है। इसलिये इसप्रकारका ज्ञान प्रत्येक माता पिताको होना अभीष्ट है। जिससे वे अपने बच्चोंकी जिज्ञासाकी तृप्ति कर सके और अपने तथा अपने कुटुम्बी जनोके जीवन व्यापार की वस्तुए बुद्धि पुरस्सर चुन सके। यही नही जब बालक ऐसी बातोंके समझने योग्य हो तब उन्हें विद्यालयोंमें उचित पाठ्यक्रमके साथ इस विज्ञानका ज्ञान कराया जाना चाहिये, जिससे वे स्वास्थ्य सरक्षण पटु गृहस्थ बन सके। यद्यपि इस विषयका विवरण वैशेषिक और सांख्यमें विशेष रूपसे मिलता है और इस पुस्तकमें उसका यथा स्थान

परिचय भी कराया गया है तथापि मुख्य आधार आयुर्वेदका रखा गया है और वही होना भी चाहिये। बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन और हिन्दी साहित्य सम्मेलनके पाठ्यक्रममे इस विषयका समावेश है और उसीकी पूर्तिके लिये इस पुस्तकका निर्माण हुआ है। तथापि इसका विवेचन इतना विशद हो गया है कि विद्यार्थियोंके अतिरिक्त इस विषयको जाननेकी इच्छा रखने वाले सभी लोग इससे लाभ उठा सकेंगे। यही नहीं स्नातकोत्तर (पोस्टग्रेजुयट) श्रेणीके अनुशीलन कर्ताओंके लिये भी यह उपयोगी हो सकेगी।- विद्यालयके अध्यापकोका कर्तव्य है कि पाठ्यक्रमके अनुकूल इसके अंश विद्यार्थियोको नोट करा दे जिससे वे अपने लिये उपयोगी अश चयन कर परीक्षाकी तैयारी कर सके। इस प्रकार मतभिन्नताके चक्करसे विद्यार्थी बचाये जा सकते हैं।

इस द्रव्यसग्रह विज्ञानका मुख्य भाग पचमहाभूतोंका है। आयुर्वेदके लिये यह अंश बहुत ही महत्वपूर्ण है। यही चिकित्साका मूलाधार है। रोगकी चिकित्सा या शरीरकी चिकित्सा कहनेसे चिकित्सा का वैज्ञानिक अर्थ नहीं निकलता। रोग तो विकृतिके फल हैं और वे जीवित शरीरके अतिरिक्त मृत शरीरमे भी देखे जा सकते हैं किन्तु मृतशरीरके रोग चिह्नोकी चिकित्सा करना किसीका अभीष्ट नहीं होता। शरीर तो पाचभौतिक द्रव्य समुच्चय और मन तथा आत्मा सयुक्त होता है। आत्मा निर्विकार है, उसे रोग हो नही सकता, शरीर और मन दोनों अचेतन हैं, अतएव अचेतनमें रोगजनित दुःख और रोग निवर्त्तिजनित दुःखका अनुभव हो नहीं सकता। इसीलिये आयुर्वेदाचार्योंने "पुरुष" और "कर्मपुरुष" की कल्पनाकी है और कहा है कि ऐसे पुरुष या कर्मपुरुषको ही रोग होते हैं, उसीकी चिकित्सा होती है। पुरुषके सम्बन्धमे सुश्रुतका कथन है कि "पञ्चमहाभूत शरीरि समवायः पुरुषः, तस्मिन् क्रिया सोऽधिष्ठान।" स्थूल शरीरके

आरम्भक पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश पञ्चमहाभूत द्रव्य हैं। शरीरी शब्दसे चैतन्य जीवात्मा युक्त स्थूल शरीरका निर्देश है। इन दोनोंके समवाय सम्बन्ध युक्त विशिष्ट मिलनसे ही कर्मपुरुष बनता है और उसे ही रोग होता है। चरक संहितामें भी स्थूल शरीर, सत्व-शरीर और आत्माके विशिष्ट मिलनसे “कर्मपुरुष” की उत्पत्ति कही गयी है। “सत्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्॥ लोकस्तिष्ठति संयोगात् तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्। स पुमांश्चेतनं तच्च तच्चाधिकरणं स्मृतम्। वेदस्यास्य तदर्थं हि वेदोऽयं सम्प्रकाशितः।” आयुर्वेदाचार्योंका कथन है कि इस कर्म पुरुषको ही रोग होता है। और उसीके लिये आयुर्वेदशास्त्रका प्रयोजन है। कर्मपुरुषका वर्णन तो “आत्म विज्ञान” के खण्डमें होगा; किन्तु पञ्चमहाभूत, काल, दिक् और मनके सम्बन्धमें इसी भागमें प्रकाश डाला गया है। इसके सहारे प्रकृति विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान और शरीर विकृति विज्ञान की बातें समझनेमें सहायता मिलेगी। इसे समझे बिना “कर्मपुरुष” का स्वरूप समझना सहज नहीं होगा।

द्रव्यसंग्रहमें पञ्चमहाभूत मुख्य हैं। स्थूल जगत और स्थूल शरीरके ज्ञानके लिये पञ्चमहाभूतका वैज्ञानिक ज्ञान होना परमावश्यक है। सूक्ष्म भूतसे स्थूल महाभूत होते हैं। शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्रको सूक्ष्मभूत कहा जाता है। शब्द तन्मात्रसे ही आकाशकी उत्पत्ति मानी जाती है। शब्दतन्मात्रके सहकारी कारणकी सहायतासे स्पर्शतन्मात्र द्वारा वायुकी उत्पत्ति होती है। शब्दतन्मात्र और स्पर्शतन्मात्रके सहकारी कारणकी सहायता पाकर रूपतन्मात्रने अग्नि या तेजको प्रकट किया। इसके बाद शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र और रूपतन्मात्रके सहकारी कारणका सहारा पाकर रसतन्मात्र द्वारा जलका प्रकटीकरण हुआ। इसी प्रकार शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र और रसतन्मात्रके सहकारी कारणके द्वारा

गन्धतन्मात्रसे पृथ्वी उपन्न हुई। यही स्थूलभूत महाभूत है। तन्मात्र अव्यक्तरूप हैं। अर्थात शब्दतन्मात्रमें केवल अव्यक्त शब्दगुण, स्पर्श-तन्मात्रमें केवल अव्यक्त स्पर्शगुण, रूपतन्मात्रमें केवल अव्यक्त रूप-गुण, रसतन्मात्रमे केवल अव्यक्त रसगुण, और गन्धतन्मात्रमे केवल अव्यक्त गन्ध गुण रहता है। किन्तु इनसे समुत्पन्न जो स्थूल भूत होते हैं उनमे ये गुण व्यक्त होते हैं। अर्थात् आकाशमें व्यक्त शब्द-गुण, वायुमें व्यक्त शब्द और स्पर्शगुण, तेजमे व्यक्त शब्द और स्पर्शके अतिरिक्त व्यक्त रूपगुण भी रहता है। जलमे व्यक्त रसगुण के अतिरिक्त शब्द-स्पर्श और रूपगुण भी रहते हैं। इसी तरह पृथ्वी में व्यक्त गन्वगुणके अतिरिक्त व्यक्त शब्द, स्पर्श, रूप और रसगुण भी विद्यमान रहते हैं। यही विशेषगुण बहिरिन्द्रिय ग्राह्य होते है। सूक्ष्मावस्था परमाणु रूप होती है। परमाणु पदार्थकी वह चरम अव-स्था है जब उसका विभाग नही हो सकता, वह नित्य है। किन्तु एकसे दो, दो से तीन और यहा तक कि त्रसरेणु होने पर समवायी कारण समवेत परस्पर मिलनसे स्थूल द्रव्य बनता है। स्थूल द्रव्य के अवयव समवायि कारण युक्त हो सकते हैं। समवायि कारणसे आश्रित रहकर जो कारण कार्यका उत्पादक होता है असमवायि कारण कहलाता है। जैसे वस्त्रके लिये सूत्रका होना समवायि कारण आवश्यक है परन्तु सूत्रोका गुण कर्म युक्त विचित्र सयोग असमवायि कारण होता है। किसी कार्य द्रव्यके विनाशके लिये असमवायि कारणका विनाश होना आवश्यक होता है। यदि असमवायि कारण का नाश हो जाय तो समवायि कारणके रहते हुए भी द्रव्यका नाश हो जाता है। जैसे सूत्रोके तानेबानेका विचित्र सयोग नष्ट हो जाय तो सूत्र रहते हुए भी वस्त्र नहीं रहेगा। यदि सूत्र न रहे, समवायि कारण न रहे, तो भी वस्त्र रूपी कार्य नहीं होगा, किन्तु समवायि कारण रूप सूत्र रहे और विचित्र सयोग रूपी सूत्रकी बिनावट रूपी

असमवायि कारण न रहे तो भी वस्त्र रूपी कार्य द्रव्यका नाश हो जाता है। इसी प्रकार कर्ता या कर्ताके सहायक साधन या निमित्त कारणके अभावमें भी द्रव्य नहीं होगा। भेद इतना ही है कि कार्य सिद्धिके बाद यदि कर्ता या निमित्त कारण न भी रहें तो उस द्रव्य पर कोई प्रभाव नही पडेगा। कोई वस्त्र बननेके बाद यदि जुलाहा या करघा-डंडा न भी रहे तो तैयार हुए वस्त्र पर उसका प्रभाव नहीं पडेगा। जगतकी उत्पत्तिके लिये ईश्वर निमित्त कारण, परमाणु समवायि कारण और परमाणुओंके संयोग असमवायि कारण होते है। पञ्चमहाभूतके साथ भूत शब्द लगा हुआ है। उसका अर्थ है "नित्यत्वेसति गुणवत् समवायि कारणत्वं भूतत्वम्।" अर्थात जो नित्य हो, साथ ही गुणवान पदार्थके समवायि कारण हो उनको भूत कहते हैं। अथवा यों समझिये कि जिससे किसीकी उत्पत्ति होती है उसे भूत कहते हैं "भवन्ति उत्पद्यन्ते येभ्यः सम्यक् इति भूतानि।" यह भूत नित्य परमाणु रूप हैं। क्योंकि भूत शब्द "भू" धातुसे बना है, जिसका अर्थ है सत्ता अर्थात विद्यमान रहना। सर्वदा सत्तायुक्त नित्य वस्तु ही होती है। आत्मा, काल, दिशा और मन भी नित्य द्रव्य तो हैं; किन्तु अपने अपने गुणोंके समवायि कारण होते हुए भी उनसे किसी प्रकार गुणवान द्रव्यकी उत्पत्ति नहीं होती। अर्थात वे किसी द्रव्यके समवायि कारण नही होते। ये नित्य होने पर भी "नित्यत्वेसति" गुणवान द्रव्योंके समवायि कारण नहीं है इनमें "गुणवत्समवायि कारणत्व" का अभाव है। अतएव ये भूत नही हैं। महा-प्रलय कालमें अनित्य द्रव्य नही रहते, नित्य द्रव्य ही विद्यमान रहते हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें परमाणु रूप नित्य भूतोंसे स्थूल भूत अर्थात इन महाभूतोंकी उत्पत्ति होती है। इसके लिये प्रत्यक्ष प्रमाण नही दिया जा सकता, क्योंकि उस समय कोई न तो परीक्षक था न गवाह था; अतएव श्रुतिप्रमाण ही आधार है। इस पुस्तकमें इस

विषयका विस्तृत वर्णन मिलेगा।

पञ्चमहाभूतोंमे आकाश पहला महाभूत है। इसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें तैत्तरीय उपनिषदमे लिखा है कि "एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः" अर्थात आत्मासे आकाशकी उत्पत्ति हुई। यो तो आकाश परमाणु या शब्दतन्मात्र होनेसे नित्य ही है और चेतन आत्मा आकाशका समवायि कारण भी नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा होता तो आकाश भी चेतन होता। समवायि कारणके विशेष गुण कार्य के लिये विशेष उत्पादक होते हैं। जब आकाश परमाणु रूप शब्द-तन्मात्र है तब इस उत्पत्तिका यह भाव हो सकता है कि आत्मा स्थूल आकाशका निर्माण कर्ता अर्थात निमित्त कारण है। महाप्रलयके पश्चात जब परमात्माकी इच्छा हुई कि सृष्टि रचना की जाय, तब आकाश परमाणुओंमे आरम्भक संयोगानुकूल क्रिया उत्पन्न होकर एक परमाणु दूसरेसे मिलनेके लिये आकृष्ट हुए और आकाश पर-माणुसे मिल कर द्वयणुककी सृष्टि हुई। फिर तीन द्वयणुक मिल कर आकाशके त्रसरेणु महत्परमाणुके कारण आकाशके कारणी भूत हुए, त्रसरेणु होने पर भी यह आवश्यक नही कि वह दृष्टिगत होवें ही, जैसे कपूर या कस्तूरीके गन्ध त्रसरेणु गन्ध द्वारा अपना अस्तित्व बतलाते हैं; किन्तु किसी उपायसे भी हम उन गन्ध त्रसरेणुओंको देख नही पाते। आकाशकी अपेक्षा वायुमे स्थूलता अधिक है; इसलिये वह स्पर्शगम्य तो है, परन्तु दृष्टिगम्य नहीं। आकाश भूतसे द्वयणुक-त्रसरेणुक आदि क्रमसे स्थूल आकाश या महाकाश उत्पन्न होता है। उस समय चारो महाभूत परमाणु स्वरूपमें रहते हैं। परमाणु दूसरे भूतके साथ मिल कर उसमे अपना गुण उत्पन्न नही कर सकता। एक जातीय परमाणु दूसरे जातीय परमाणुसे मिलकर द्वयणुक बनावे तो उसमे विशिष्ट शब्दादिकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। अतएव परमाणु स्वरूप आकाशमे जो अव्यक्त शब्द रहता है वही

शब्द महाकाशमें व्यक्त होता है। शब्दतन्मात्रमें अविशेष या अव्यक्त शब्द तथा स्थूलाकाशमें विशेष या व्यक्त शब्द गुण रहता है। स्थूल आकाश ही महाभूत है। इस सम्बन्धमें पण्डित यादवजी त्रीकमजी आचार्यने सङ्क्षेपमें किन्तु वैज्ञानिक सरणीसे जो विचार किया है वह विवेचनामें अच्छा सहायक हो सकता है।

जब आकाश स्थूल होकर महाभूत बन गया तब उसके सहयोगसे महावायु उत्पन्न हुआ। परमात्माकी इच्छासे स्पर्शमात्र गुणविशिष्ट स्पर्शतन्मात्र या वायु परमाणुमें आरम्भक संयोगानुकूल क्रिया उत्पन्न हुई जिससे दो दो वायु परमाणु मिल कर वायु के द्व्यणुक उत्पन्न हुए। फिर तीन वायु द्व्यणुकसे वायु त्रसरेणु बना। इसके पश्चात वायुके त्रसरेणु और स्थूलाकाशके त्रसरेणु उपष्टम्भाख्य संयोगसे मिलित होकर रासायनिक मिलन द्वारा महावायु या वायुमहाभूत बना। वायु महाभूतके साथ आकाश महाभूत भी उपष्टम्भाख्य संयोगसे मिलित रहता है। इसलिये वायु महाभूतमें वायुभूतका गुण स्पर्श तथा अनुप्रविष्ट आकाश महाभूतका शब्द मिलकर स्थूल वायु शब्द और स्पर्श दो गुणवाला प्रकट हुआ। महावायुसे पहले महाकाश वर्तमान था इसलिये महाकाश वायुमें अनुप्रविष्ट होकर अपना गुण उत्पन्न कर सका। उस समय तक तेज आदि भूत परमाणु रूपमें ही थे। अतएव स्थूल वायु से मिल कर अपने गुणोंकी उत्पत्ति नहीं कर सकते थे। महावायुमें व्यक्त स्पर्श तो है, परन्तु वह स्पर्श अनुष्णाशीत है। महावायुकी उत्पत्तिके बाद अव्यक्त रूप मात्र गुण विशिष्ट रूपतन्मात्र नामक तेज परमाणुमें आरम्भक संयोगानुकूल क्रिया उत्पन्न होकर दो तेज परमाणु से तेजके द्व्यणुक उत्पन्न होते हैं। फिर तीन तेजके द्व्यणुक मिल कर तेजके त्रसरेणु बनाते हैं। फिर तेजके त्रसरेणुके साथ महाकाश और महावायुके त्रसरेणु भी उपष्टम्भाख्य संयोगसे मिलित होकर

व्यक्त शब्द-स्पर्श और रूप गुणयुक्त तेज महाभूतको उत्पन्न करते हैं। स्थूल तेजके पहले आकाश और वायु स्थूलरूपमे आ चुके थे इसलिये आकाश और वायुके त्रसरेणु तेजके त्रसरेणुके साथ मिलकर उपष्टम्भाख्य सयोग द्वारा स्थूल तेजमे तेजके गुण रूपके साथ अपने गुण शब्द और स्पर्शको उत्पन्न कर देते हैं। जिससे स्थूल तेजमे शब्द-स्पर्श और रूप ये तीन गुण होते हैं। किन्तु उस समय तक परमाणु रूपमें उपस्थित जल और पृथ्वी तेजके साथ मिलित होकर उसमे अपने गुण उत्पन्न नही कर सकते थे। जलकी उत्पत्तिके समय अव्यक्त रसमात्र गुण विशिष्ट रस तन्मात्र नामक जल परमाणुमे आरम्भक सयोगानुकूल जल क्रिया उत्पन्न होकर पूर्वोक्त क्रमसे आकाश, वायु और तेजके अनुप्रवेश द्वारा शब्द-स्पर्श-रूप और रस गुण युक्त स्थूल जल या जल महाभूत उत्पन्न होता है। स्थूल जलमें रस भी व्यक्त है। किन्तु केवल जलका रस मधुरादिरूपमे व्यक्त नही हो सकता है। महा पृथ्वीकी उत्पत्तिके बाद पाचो भूतोके विशिष्ट मिलनसे अन्य दो दो भूतोंके प्राधान्यसे मधुरादि षड्रस उत्पन्न होते हैं। स्थूल जलके बाद अव्यक्त गन्ध तन्मात्र गुण विशिष्ट गन्ध तन्मात्र नामक पृथ्वी परमाणुमे आरम्भक सयोगानुकूल क्रिया उत्पन्न होकर द्व्यणुकादि क्रमसे चतुरेणु उत्पन्न होकर स्थूल आकाश-वायु-तेज और जलके त्रसरेणुके साथ उपष्टम्भाख्य सयोग द्वारा व्यक्त शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्धगुण युक्त महा पृथ्वी उत्पन्न होती है। इससे स्पष्ट है कि भूत रूपमे उसके गुण अव्यक्त रहते है और महाभूत रूपमे गुण व्यक्त हो जाते हैं।

द्रव्यसंग्रह विज्ञानमे पञ्च महाभूतोके अतिरिक्त आत्मा, मन, काल और दिशाकी गणना होती है। आत्माका विचार हमने इस भागमें न कर आत्मविज्ञान विभागमें करनेका विचार किया है। मनका सम्बन्ध आत्माके साथ तो है ही; किन्तु इन्द्रियोके साथ भी है और एक

इन्द्रिय रूपमें उसकी गणना होती है। इसलिये मनका विचार हमने इस विभागमे भी करना उचित समझा। भारतीय दर्शनका आरम्भ हजारो वर्ष पहले वैदिक कालमे हुआ। उपनिषदकालमे उसकी उस समयकी दृष्टिसे चरमोन्नति हुई। गौतमका न्यायदर्शन, कणादका वैशेषिक दर्शन, पतञ्जलिका योगदर्शन, कपिलका सांख्यदर्शन, जैमिनि का मीमांसा दर्शन और व्यासका ब्रह्मसूत्र या वेदान्त दर्शन आर्ष दर्शन हैं। इनके सिवाय चार्वाकका नास्तिक दर्शन, बौद्धदर्शन और जैन दर्शनकी धारा भी आर्ष दर्शनसे टक्कर लेती हुई आगे बढ़ती रही। किन्तु राजनैतिक उथल पुथलके समय इधर ढाई हजार वर्षों मे दर्शनकी स्वतन्त्र मन्दाकिनीका प्रवाह रुक गया। तथापि टीका और व्याख्याके रूपमे उसमे कुछ न कुछ नवीन और सुलझे हुए विचार स्थान पाते रहे। वैशेषिक पर प्रशस्तपादकी टीका इन्हीमे एक है; और प्रमुख है। द्रव्योके विज्ञान और विवरणकी बाते इसमें विस्तार के साथ दी गयी हैं। इस दो ढाई हजार वर्षोंके बीचमे न तो आयुर्वेदकी और न दर्शन शास्त्रकी स्वतन्त्रता पूर्वक उन्नति हुई। जिससे आधुनिक कालका भौतिक विज्ञान बहुत आगे बढ गया है और इसका उसके साथ समन्वय करनेका काम प्रयत्नशीलताका विषय हो उठा है। आयुर्वेदमे यद्यपि सभी आर्ष दर्शनोका प्रभाव पड़ा है, किन्तु सांख्य और वैशेषिकका प्रभाव अत्यधिक पड़ा है। यह सब होते हुए भी आयुर्वेदका दर्शन अपनी मौलिकता और विशेषता रखते हुए स्वतन्त्र विचार धाराकी गर्जना करता है। आयुर्वेदाचार्योंने आंख मूंदकर किसी दर्शनका अनुकरण नही किया। आयुर्वेदाचार्योने अपने सिद्धान्तके अनुकूल दर्शन सिद्धान्तोको स्वतन्त्र स्वरूप दिया है। अध्यापकोंका कर्तव्य है कि आयुर्वैदिक सिद्धान्तोको मुख्यतः पढाकर अन्य बाते संक्षेपमे समझा दिया करे। यथार्थमें भिन्न भिन्न दर्शनोमे कुछ मत भिन्नता ऊपर ऊपर दिख सकती है, परन्तु तत्वतः मत भिन्नता नही है। भिन्न

भिन्न दर्शनोंका जो प्रतिपाद्य विषय है, उसकी दृष्टिमे वर्णनमे कुछ भेद दिखता है। आयुर्वेदीय दर्शन सिद्धान्तोमे किसीको भ्रान्ति न हो इसलिये आयुर्वेदाचार्योंने स्पष्ट कह दिया है कि हम तो स्थूल जगत और स्थूल शरीरकी दृष्टिसे "पृथुदर्शी" है। इसी प्रकार द्रव्य सम्बन्धमे भी उन्होंने भूतोंकी अपेक्षा महाभूत रूपमे ही उन्हें लिया है। चिकित्सा शास्त्रमें उन्होंने सूक्ष्म विचारकी उतनी आवश्यकता नही समझी। यदि पंचमहाभूत शरीरमे सम अवस्थामे रहे तो दोष-धातु आदि भी जीवनोपयोगी समावस्थामे रहेंगे। शरीरमे जो निरन्तर छीजन या क्षयभाव होता रहता है उसे द्रव्यविज्ञान सम्मत आहार विहारसे पूर्ण करते रहना पडता है। आहार और औषध द्रव्य पाञ्चभौतिक ही है अतएव पाच भौतिक विज्ञानका जानना बहुत आवश्यक है।

दर्शन विषयोकी गहनताका विचार कर आयुर्वेदाचार्योंने पहले ही सूक्ष्म तत्वके बदले स्पष्ट स्थूल रूपको स्वीकार किया है। आहार-द्रव्योको ही पाच भौतिक नही माना बल्कि मन और सूक्ष्म इन्द्रियोंके भी आहकारिक स्वरूपके बदले पञ्च भूतात्मक स्वरूप लेना पसन्द किया है। स्थूल जगत और स्थूल शरीरका ही सम्बन्ध आयुर्वेदसे है। कारण द्रव्योंके विवादसे बचनेके लिये वे आवश्यक मूल कारणको अपनाते हैं। स्वभाव, ईश्वर, काल, यदृच्छा (आकस्मिकता), नियति (पुरुषोके धर्माधर्म) तथा मूल प्रकृतिको भी मूल कारण माननेमे उन्होंने सुविधाका बोध किया है। अभावको आयुर्वेदने अलग पदार्थ नही माना। ऋतुभेदसे आहार-विहारमें भेद करना पडता है। औषधियो के गुणधर्म भी काल भेदसे परिवर्तित या परिवर्धित होते हैं। ऋतुभेद से दोषोका संचय, प्रकोप और प्रशमन होता है। औषधि सेवनमे भी कालका विचार होता है। कालानुसार पृथ्वी और पृथ्वीगत पदार्थों में सूर्य, चन्द्रका प्रभाव पडता है। अतएव कालका विचार इस पुस्तक

में किया गया है। रोग और रोगीकी अवस्थाका भी काल विचार होता है। उत्तरायण, दक्षिणायन, दिन, रातके भेदसे भी चिकित्सा मे विचार किया जाता है। औषधि सेवन कालके साथ ही आहार-काल, शयन और निद्राकाल भी विचारणीय होता है। दिशाका भेद भी आयुर्वेदका विचारणीय विषय है। पूर्व दिशाके वायुका प्रभाव अलग होता है और दक्षिणानिलका प्रभाव अलग, सूर्यकी गतिसे दिशाओंकी सर्दी गर्मी विचारणीय होती है। इसलिये इसमें दिक् वर्णन भी आ गया है।

इतना विशद विवेचन देते हुए भी और स्थूल स्वरूपका विचार होते हुए भी हमारा दर्शन सम्मत पदार्थविज्ञान पश्चिमी विद्वानोंके लिये दुरूह ही रहा। मौनियर, विलियम्स, मैक्समूलर जैसे विद्वान भी पञ्चभूतोंके गुणों, विशेषों और पञ्चतन्मात्रको नही समझ सके। उन्होंने तेज या अग्निको लौकिक अग्नि-फायर, पृथ्वीको साधारण भूमि-अर्थ, वायुको साधारण हवा-एयर, और जलको मामूली पानी-वाटर माना है। इसीलिये इनके सघटन को न समझ उन्होने इन्हे अवैज्ञानिक बतलाया है। पश्चिमी विद्वानोका पदानुसरण करने वाले कुछ पश्चिमी विचार वाले भारतीयोने भी दोषोको काल्पनिक कहा है। इस समय पदार्थ विज्ञान और त्रिदोष विज्ञानका ऊहापोह इसीलिये हो रहा है कि भ्रान्त लोगोकी भ्रान्ति मिटा दी जा सके तो अच्छी बात है। विशेष इन्द्रियार्थ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध अविशेष शब्द-तन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्रकी सूक्ष्मता, अर्थात पंचीकृत भूत और अपंचीकृत भूतका तत्वरूप समझाया जा सके तो सुविधाजनक होगा। हमारे यहां तत्व उसे कहते हैं जो सर्वत्र व्याप्त हो, इसी दृष्टिसे अकाशादि द्रव्य तत्व हैं। "तनोति-सर्वमिदम्"। इसकी तुलनामे आधुनिकोंके ९२ तत्व कहां तक पहुँच सकते हैं? डाक्टर प्रसादी लाल झा आकाशको स्पेस-ईथर, वायुको

गैसेस, अग्निको इलेक्ट्रिसिटी लाइट-हीट, आप या जलको वाटरी फ्लुइड, और पृथ्वीको सालिड बाडी कहते है। ऐसी चर्चा होती रहने की आवश्यकता है। उधर पश्चिमवाले तो पञ्चमहाभूतकी दुरूहता समझ भी नहीं पा रहे हैं; इधर भारतीय विद्वान इसके विचारमें मे यहां तक ऊचे पहुँच रहे हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशको देवता, भगवान और परमात्मा तकके दर्जे पर पहुँचाने का प्रयास करते रहे हैं। वायु, अग्नि और जल देवकोटिमें माने जाते हैं। इनकी शारीरिक परिस्थितिके साथ ही आधि भौतिक और अधि दैविक सत्ताकी भी कल्पना होती है। वायुको चरकने भी भगवान शब्दसे सम्बोधित किया है और पुराणोमें वायु देवता है ही। वेदोने भी "सूर्योदेवता, सोमोदेवता, वायोदेवता, अग्निर्देवता, वरुणोदेवता" कह कर इन सबके देवत्वकी घोषणा की है। शरीरके पोले भागोमे और नाडीचक्रोंमें वायुका पूर्ण-प्रभाव है। रक्त और पचन शक्तिका काम अग्नि रूपी पित्त करता ही है। जलके, द्रवत्व और तृप्ति तथा पुष्टिके जितने काम हैं वे श्लेष्माशक्तिके द्वारा सम्पादित होते ही हैं। इनका आधिदैविक स्वरूप सूर्य, चन्द्र और वायु देवता है ही। आधिभौतिक स्वरूपमे वायु, अग्नि और जल हैं। किन्तु आयुर्वेद वर्णित अग्नि, पित्त, वायु और जलको साधारण भौतिक रूपमें ग्रहण करना और उनके व्यापक स्वरूप पर ध्यान न देना अवश्य ही मोटी बुद्धिका परिचायक है। वेदान्तियो और ईश्वर, जीव तथा ब्रह्मके विचारमे लगे हुए धार्मिक विद्वानोमे ऐसी अनेक विचार धाराए हैं जो पञ्चमहाभूतके एक एक तत्वको ईश्वर तक ले जानेकी बात सोचते हैं। "अभिलाख सागर' में भिन्न भिन्न गुरुओकी कल्पना कर पृथ्वीसे लेकर निराकार ब्रह्म तकके ब्रह्मत्वका प्रतिपादन कराया गया है। एक विचारधाराके गुरु कहते है कि "स्थूलरूप ब्रह्मका रूप पृथ्वी है। पृथ्वीसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल

हुआ। सर्व सृष्टिके जड चेतन पृथ्वीसे उत्पन्न होकर पृथ्वीमे मिल जाते हैं। चराचर जो जीव रूपमानमे हुआ सो सब पृथ्वीसे उत्पन्न हुआ। अन्तमे सब पृथ्वीमे होगा। पृथ्वीका नाश नही होता। प्रलय शरीर नाश हो जानेको कहते हैं। जल रुधिर है, वायु श्वास है, अग्नि ज्ञान है, आकाश शब्द स्थान है। यह सब पचीकरण है।" दूसरी विचार-धाराके गुरु कहते हैं "ब्रह्मका सूक्ष्म स्वरूप जल है। जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्निकी उत्पत्ति हुई। यह शरीर जब मुर्दा हो जाता है तब जल नही रहता। जड पदार्थमें जब तक जल है तब तक जीव है। जड चेतनमे जो आकार रूपमान है वह सब जलका स्वरूप है। आदिमे सबकी उत्पत्तिका कारण जल दीखता है। जलको आपरूप कहते हैं। जलमें ही ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। "जल है ब्रह्म, पृथ्वी माया।" एक तीसरी विचारधाराके गुरुका कथन है "ब्रह्मका कारण रूप अग्नि है।" अग्निसे जल पैदा हुआ। जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे आकाश और आकाशसे वायु उत्पन्न हुआ। अग्नि तेजरूप होकर घटघटमे व्यापक है। जब तेज नहीं रहता तब शरीर मुर्दा भयंकर रूप हो जाता है। ब्रह्म तेज रूप है। चौथी विचार-धाराका कथन है "ब्रह्मका महाकारण रूप वायु है।" वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे आकाश उत्पन्न हुआ। वायु श्वासा होकर घटघटमें व्यापक है। जब वायुरूपी श्वास निकल जाता है तब सब जीव निर्जीव हो जाते हैं। योगी लोग समाधिमें वायुका साधन कर ब्रह्म समान हो जाते है। यह ब्रह्माण्ड वायुके आधारसे स्थिर और चर है। गर्मी-सर्दी-बरसातका कारण वायु है। वायुका बन्धन और जीवकी उत्पत्तिका अर्थ एक है। जब वायु वायुमे मिल जाता है तब जीवकी मुक्ति हो जाती है। विचारसे सबका कर्त्ता वायु दरशाता है।" पाचवीं विचारधाराके गुरुका कहना है "ब्रह्म का केवल रूप आकाश है।" आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्नि-

से जल, जलसे पृथ्वी पैदा हुई। यह जगत ब्रह्मसे उत्पन्न होकर पीछे ब्रह्ममें लय हो जाता है। इस प्रकार सारा जगत आकाशसे उत्पन्न होकर अन्तमें सब आकाशमें हो जाता है। शरीरमें जो पोलापन है वही आकाश है, उसीमें जीव, चेतन्य, अन्तःकरणका अनुमान होता है। आकाश रूपी ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है, निर्गुण, निराकार शब्द आकाश को शोभा देते है। जिस प्रकार ब्रह्म अनन्त, सबसे बडा और सबसे छोटा है, उसी प्रकार आकाश भी है। वेदोमें भी खं ब्रह्म लिखा है। छठी धाराके महात्मा इन सबोंका समन्वय कर कहते हैं "ब्रह्मका स्वरूप एकतत्व नहीं, पाचों तत्व मिलकर उसका स्वरूप सम्पूर्ण होता है। जुदा जुदा देखनेसे खण्डन दर्शाता है।" एक आचार्यका मत है कि आकाश ब्रह्मका मुख तथा शिर है, वायु हाथ है, अग्नि उदर है, जल कमर है, पृथ्वी पाव है। जगत उसका स्वप्न है। एक मत है कि आकाश उसका रूप है, वायु श्वासा है, अग्नि प्रकाश है, जल और पृथ्वी मूत्र और मलके समान है। चौरासी लाख जीव उसके कीट हैं। कोई कहता है पृथ्वी ब्रह्मका रूप है, जल रुधिर है, वायु शक्ति है, अग्नि ज्ञान है, आकाश स्थान है। चौरासी लाखजीव उसके अंग हैं। एक और विचार है कि आकाश कैवल्य शरीर है, जल सूक्ष्म शरीर है, पृथ्वी स्थूल शरीर है। ये पाचो शरीर जुदा जुदा नामको हैं। सबको एक जानना। एक और मत है कि ब्रह्मका अनादि निराकार रूप आकाश है। प्रलयके पश्चात भी यह रूप बना रहता है। जब उसे सृष्टि बनानी होती है तब अग्नि रूप हो जाता है। वायु उसकी शक्ति है। यह ब्रह्म और मायाका निराकार रूप है, दूसरी वार जब आकार होता है तब जल पृथ्वीका रूप हो जाता है। उस रूपसे सब आकार सृष्टिका जड चेतन उत्पन्न होता है। अन्तमे निराकार हो जाता है। पञ्च तत्वका गुण अन्त कोई नहीं कह सकता। ये सभी विचार धाराएं मोटे तौर पर देखनेसे

भिन्न भिन्न हैं; किन्तु अपने अपने अवसर पर सभी सत्य हैं; सबका अपना एक स्वतन्त्र आशय है। पञ्चमहाभूतका विचार अनन्त है। जो जितनी थाह लगा लेता है वह उतनेमें ही निहाल हो जाता है। आवश्यकता है कि इसकी विचार गवेषणा जारी रहे और वर्तमान विज्ञानको ऐसी देनदे जिससे उसमे सूक्ष्म विचारोंकी प्रवृत्ति बढे और स्थूल विचारोको नया बल मिले।

इस पुस्तकको संवत २००५ मे कलिमपोगमे डेढ महीने रह कर लिखा था। वहाके शीतल जलवायु जनित शान्ति और आरा निवासी श्रीमान् बाबू निर्मल कुमारजी जैन रईसके चन्द्रलोक स्थित स्थानके सुख निवास तथा उनके द्वारा प्राप्त सुविधाके कारण पुस्तक लेखनका काम निश्चिन्त भावसे हो सका। इसलिये इसका एक आवश्यक श्रेय बाबू साहबको भी है। पुस्तकका प्रणयन बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिनके पाठ्यक्रमकी सुविधाके लिये हुआ था और हम चाहते थे कि इसका प्रकाशन शीघ्र हो जाय, किन्तु प्रकाशन सम्बन्धी असुविधाओके कारण इसमे शीघ्रता न हो पायी। इस बीचमे इस विषयकी हिन्दीमे दो पुस्तके और भी प्रकाशित हो चुकी हैं। किन्तु अपनी वर्णन शैली, विषय विवेचनकी सरल पद्धतिके कारण इस समय भी इस पुस्तकका अपना अलग महत्व हैं। भारतीय पदार्थ विज्ञान के प्रथम खण्डमे प्रमाण विज्ञान, द्वितीयमें पदार्थ विज्ञान और तृतीय खण्डमे द्रव्य विज्ञानका विवेचन हुआ है। गुण विज्ञानका भाग छप रहा है और आत्मविज्ञानका भाग यथा सुविधा लिख कर प्रकाशित होगा। आशा है, विद्यार्थी और अध्यापक समाज तथा दर्शन विषयके प्रेमी इससे आवश्यक लाभ उठानेमे सफल होंगे।

जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल

शुद्ध आषाढ़ शुक्ल २ स० २००७ वै०

श्री धन्वन्तरये नमः, श्रीमतेभरद्वाजाय नमः

पदार्थ विज्ञान

तृतीय भाग

—:o:—

द्रव्यसंग्रह विज्ञान

—:o:—

द्रव्य परिचय

पदार्थ सामान्य विज्ञानके विभागमें छः भाव पदार्थोंका वर्णन किया जा चुका है। उन छः भाव पदार्थोंमें सबसे पहला और प्रधान पदार्थ "द्रव्य" है। इसी प्रकरणमे द्रव्यके सम्बन्धमे भी कुछ लिखा जा चुका है। किन्तु द्रव्य एक स्वयं स्वतन्त्र विषय है अतएव उसका विस्तृत वर्णन भी आवश्यक है। वैशेशिकशास्त्रमे द्रव्य ९ माने गये हैं।

पृथिव्यापस्तेजो वायु राकाशं कालो दिगात्मा मन इतिद्रव्याणि।

अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), वायु, आकाश, काल, दिक आत्मा, और मन ये द्रव्य है। आयुर्वेदके प्रधान आचार्य अग्निवेशने भी इसीका समर्थन किया है, किन्तु नामकरण अपना स्वतन्त्ररूपसे किया है।

खादीन्यात्मा मनः कालो दिशश्च द्रव्यसंग्रहः
सेन्द्रियं चेतनं द्रव्यं, निरिन्द्रियमचेतनम् ॥

इसमे दो विशेषताए हैं, एक तो "खादीनि" शब्दसे उन्होंने आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीका एक अलग वर्ग बना दिया है और आत्मा, मन, काल, दिशा इन्हे एक अलग श्रेणीमें रख दिया है। दूसरी विशेषता यह कि इन नौ द्रव्योंके समूह को द्रव्यसग्रह के नाम से सम्बोधन किया है। इसलिये हम भी इस विभाग का नाम "द्रव्यसग्रह विज्ञान" रख रहे हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीके समूह पञ्चकको पञ्चमहाभूत कहा जाता है। इस लिये इन पाचोंका हम वर्णन इसी प्रकरण मे करेंगे और मन तथा आत्मा, दिक् और कालका वर्णन तत्वनिरूपण प्रकरणमे करेंगे। द्रव्यसग्रह मे जो द्रव्य जीवधारी सेन्द्रिय हैं, उन्हे चेतन कहते हैं और निरीन्द्रिय द्रव्यो को अचेतन कहते हैं।

पंचमहाभूत

अग्निवेश सहिता के शरीर स्थान मे आकाशादि पञ्चमहाभूतोंकी इसी नाम से गणना की गयी है और उनके गुणोका भी वर्णन किया गया है—

महाभूतानि खंवायुरग्निरापःक्षितिस्तथा।
शब्दः स्पर्शश्च रूपंच रसौ गन्धाश्च तद्गुणाः
पूर्वः पूर्व गुणश्चैव क्रमशो गुणिषु स्मृतः

अर्थात् ख आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पञ्चमहाभूत हैं। इनमे से आकाशका प्रधान गुण शब्द, वायुका प्रधान गुण स्पर्श, अग्नि का प्रधान गुण रूप, जल का प्रधानगुण रस और पृथ्वी का प्रधान गुण गन्ध है। दूसरे श्लोकके द्वारा यह सूचित किया गया है कि उनमे से पहले मे तो एक ही गुण है, किन्तु इसके वाद क्रमशः उनमे एक एक गुण की वृद्धि होती गयी है। अर्थात् आकाशका तो केवल एक गुण शब्द है। इसके वाद वायु मे शब्द और स्पर्श दो गुण

हैं, अग्नि में शब्द, स्पर्श और रूप तीन गुण हैं, जलमे शब्द, स्पर्श, रूप और रस चार गुण है। इसके बाद पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पाचोंगुण विद्यमान हैं। पृथ्वी मे गुणो की पूर्णता हो गयी है। शब्दादि गुण हैं और आकाशादि गुणी है। इस प्रकार उत्पत्ति क्रमके अनुसार क्रमशः महाभूतोमें अपने से पहले महाभूत के गुणो की वृद्धि होती गयी है, इसे भूतानुवेश कृत गुण कहते हैं। आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी हुई है। वायुमे अपने गुण स्पर्शके अतिरिक्त आकाशका शब्द गुण भी रहता है, क्योकि उसमें आकाश भी अनुप्रविष्ट है। इसी प्रकार अन्यमें समझते चलिये। वायुसे अग्निकी उत्पत्ति है अतएव उसमें अग्नि के रूप गुणके अतिरिक्त आकाशका शब्द और वायुका स्पर्श गुण भी अनुप्रविष्ट है। अग्निसे जलकी उत्पत्ति है, अतएव उसमें आकाश का शब्द, वायुका स्पर्श और अग्निके रूप गुणका अनुप्रवेश हुआ है और जलका निजका रस गुण तो है ही। जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति है। अतएव उसमें अपने गन्ध गुणके अतिरिक्त आकाशके शब्द, वायुके स्पर्श, अग्निके रूप और जलके रस गुणोका भी अनुप्रवेश है। इसीलिये कहा है "**विष्ट ह्यपरं परेण**" और "**आद्याद्यस्य गुणांस्त्वेषामवाप्नोति परः परः। यो यो यावतिथश्चैषां स स तावद् गुणः स्मृतः।**"

पञ्चमहाभूतों के लक्षण

इन महाभूतो के उनके गुण के अनुसार लक्षण भी होते हैं, जिनके सहारे शरीर में उनकी स्थिति और कार्य का पता चलता है।

खर द्रव चलोष्णत्वं भूजलानिल तेजसाम्।
आकाशस्याप्रतीघातो दृष्टं लिंगं यथाक्रमम्॥
लक्षणं सर्व मेवैतत् स्पर्शनेन्द्रिय गोचरम्।
स्पर्शनेन्द्रिय विज्ञेयः स्पर्शो हि स विपर्ययः॥

अर्थगोचरत्व

गुणाः शरीरे गुणिनां निर्दिष्टा श्चिन्ह मेवच
अर्थाः शब्दादयो ज्ञेयः गोचरा विषया गुणाः ॥

जिसमे गुण होते हैं उसे गुणी कहते है। पृथ्वी आदिमें गन्धत्व आदि गुण हैं; अतएव आकाश-वायु अग्नि, जल, पृथ्वी आदिको गुणी कहते हैं। शरीरमे जिस गुणकी प्रतीति हो उसीके अनुसार उसके गुणी महाभूतका अनुमान होगा। अर्थात् ये गुण महाभूतोके स्वरूपका ज्ञान कराते हैं; इसलिये इन्हे उनके लिग भी कह सकते हैं। पहले शब्दादिको गुण कहा है, अब कहते है कि इन्हीको अर्थ, अर्थगोचर विषय समझे अर्थात् पृथ्वीका अर्थ गन्ध, जलका अर्थ रस, अग्निका अर्थ रूप, वायुका अर्थ स्पर्श और आकाशका अर्थ शब्द है। इन्हींके द्वारा महाभूतोका प्रमाण इन्द्रियगोचरत्व दृष्टिगोचर होता है। इसलिये इन्हे गोचर भी कहते हैं। ये गुण प्रधानतः दो प्रकारके हैं एक शब्द स्पर्शादि और दूसरे गुरुत्वादि। शब्द स्पर्शादिमे दो विभाग हैं एक कारण गुण, दूसरा कर्मगुण। कारण स्थितिमें उनसे उनके ग्रहण योग्य इन्द्रियोकी उत्पत्ति होती है और कर्मस्थितिमे इन्द्रिया उन अर्थोको ग्रहण करती है। सभी पदार्थ पचमहाभौतिक हैं और उन्हें ग्रहण करने वाली इन्द्रिया भी पाचमहाभौतिक ही हैं। इस प्रकार पञ्चमहाभूतोकी कर्तृ दशा और कर्म दशा सिद्ध है। इसी तरह जो बुद्धि जिस जिस इन्द्रियका आश्रय कर कार्य प्रवृत्त होती है, उसे उस इन्द्रियका नाम दिया जाता है। जैसे जो बुद्धि मनसे उत्पन्न होती है उसे मनोभवा कहते है। सुश्रुतमे **"तेपांविशेपाः शब्द स्पर्श रूप रस गन्धाः"** कहा है। उसका भाव यह है कि शब्द विषय स्थूल आकाशका, स्पर्श स्थूल वायुका, रूप

स्थूल अग्नि का, रस स्थूल जलका, और गन्ध स्थूल पृथ्वीका विषय है। इन्हे उनका परिणाम भी कह सकते हैं।

महाभूतोंके कार्य-स्थान

ऊपर जो बाते कही गयी हैं उनका अधिक स्पष्टीकरण सुश्रुतके वचनसे होता है—

आन्तरिक्षास्तु शब्दः—शब्देन्द्रिय सर्वच्छिद्र समूहो विविक्तता च।
वायव्यास्तु—स्पर्श, स्पर्शेन्द्रियं सर्वचेष्टासमूहः सर्व
शरीर स्पन्दनं लघुता च।
तैजसास्तु—रूप, रूपेन्द्रिय वर्णः सन्तापो भ्राजिष्णुता
पक्तिरमर्पस्तैक्ष्ण्यं शौर्यं च।
आप्यास्तु—रसो, रसनेन्द्रियं सर्व द्रव समूहो
गुरुताशैत्य स्नेहो रेतश्च
पार्थिवास्तु-गन्धो, गन्धेन्द्रिय सर्वभूत समूहो गुरुताचेति ॥

इसमे हर एक महाभूतके गुण, शरीरमें उनका आश्रय स्थान और उनके कार्योका स्पष्ट निर्देश किया गया है। अर्थात अन्तरिक्ष यानी **आकाश** का गुण शब्द है, उसका आश्रय शब्देन्द्रिय है। सारे शरीर मे जो छिद्र समूह हैं, अवकाश और विविक्तता है, यह उसके कार्य लक्षण हैं। **वायुका** गुण स्पर्श है, निवास उसका स्पर्शेन्द्रिय है। सम्पूर्ण शारीरिक चेष्टाएं प्रवर्तित करना, स्पन्दन, कम्पन और हल्कापन लाना उसके कार्य हैं। तेज अर्थात **अग्निका** गुण रूप है। स्थान चक्षु, और शरीरमे वर्ण या रङ्गत उत्पन्न करना, उष्णता कायम रखना, तेज चमकाना, पचन कार्य, क्रोध, तीक्ष्णता और शूरता लाना उसके काम हैं। **जलका** गुण रस है, स्थान जिह्वा है और शरीरगत सम्पूर्ण

द्रव भाग, भारीपन, शीतलता, शान्ति स्निग्धता और वीर्य उत्पन्न करना जलका काम है। **पृथ्वी** का गुण गन्ध है, आश्रय स्थान घ्राणेन्द्रिय और शरीगत सब ठोस भाग, गुरुता, कठिनता लाना यह पृथ्वी महाभूतका ही काम है।

इस प्रकार इन महाभूतोंके द्वारा प्राणियोंके शरीरमे जिन जिन भावोंकी उत्पत्ति होती है और उनका जो परिणाम होता है, उनका वर्णन किया गया है। ये आकाशादि पचमहाभूत प्रकृतिमय तथा प्रकृतिगुणयुक्त है। इन्हींसे स्थावर-जंगम सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न हुई है। पचमहाभूतोमें त्रिगुण वैषम्यावस्थामे होते हैं। महाभारतमें लिखा है—

चेष्टा वायुः खमाकाश मूष्माग्निः सलिलं द्रवम्।
पृथिवी चात्र संघातः शरीरं पाञ्चभौतिकम्।
इत्येतैः पञ्चभिभू तै यु क्त स्थावर जंगमम्।

इस प्रकार समी स्थावर जगमात्मक द्रव्य पञ्चमहाभूतात्मक हैं। द्रव्यगत महाभूतोका परिमाण भिन्न भिन्न होता है, जिससे द्रव्योमें भी भिन्नता आ जाती है। पाँचो महाभूतोके न्यूनाधिक मिश्रणसे जो द्रव्याभिनिवृ 'त्ति होती है उसे पंचीकरण कहते हैं। शरीरमे इन पच महाभूतोकी पूर्ति खाद्यद्रव्यो द्वारा होती है। अतएव औषध-अन्न आदि द्रव्योंमें कौन कौन महाभूतके द्वारा क्या क्या गुणदोष आते हैं यह जानना भी द्रव्यगुणसग्रह विज्ञानका विषय है। इसलिये पचमहाभूतो का सङ्क्षिप्त परिचय देकर अब हम पृथक् पृथक् उनका वर्णन करते है। वैशेषिकमें पृथिव्यादि क्रमसे वर्णन है; किन्तु हम उसी क्रमसे वर्णन करेगे जिस क्रमसे ऊपर चरकोक्त महाभूतो की गणना हुई है—

---

१ आकाश

१ आकाशकालदिशामेकैकत्वादपर जात्यभावे सति पारिभाषिक्य स्तिस्रः सञ्ज्ञा भवन्ति आकाश कालो दिगिति।

२ तत्र आकाशगुणाः शब्द-सख्या-परिमाण-पृथक्त्व संयोग-विभागाः।

३ तत्र शब्दः प्रत्यक्षत्वे सति अकारण गुण पूर्वकत्वाद-यावद् द्रव्यभावित्वादाश्रयादन्यत्रोपलब्धेश्च न स्पर्श-वद्विशेष गुणः

४ वाह्येन्द्रिय प्रत्यक्षत्वादात्मान्तर ग्राह्यत्वादात्मान्य सम-वायादहङ्कारेण विभक्त ग्रहणाच्च नात्मगुणः।

५ श्रोत ग्राह्यत्वाद्विशेष गुण भावाच्च न दिक् काल मनसाम्।

६ पारिशेष्याद् (परिशेषादिति) गुणोभूत्वा आकाश-स्याधिगमे लिङ्गम्।

७ शब्द लिगत्वा विशेषादेकत्वं सिद्धम्।

८ तदनुविधानात् पृथक्त्वम्।

९ विभववचनात् परम महत् परिमाणम्।

१० शब्द कारणत्व वचनात् संयोगविभागाविति।

११ अतो गुणवत्वादनाश्रितत्वाच्च द्रव्यम्।

१२ समानासमान जातीय कारणा भावाच्च नित्यम्।

१३ सर्व प्राणिनाञ्च शब्दोपलब्धा निमित्तं श्रोत्रभावेन।

१४ श्रोत्रं पुनः श्रवण विवरसञ्ज्ञको नभोदेशः।

१५ शब्द निमित्तोपभोग प्रापक धर्माधर्म्मोप निबद्धः।

१६ तस्य च नित्यत्वेसति उपनिबन्धक वैकल्याद् वाधिर्यमिति।

उत्पत्ति—आकाश निराकार है, नित्य है और विभु है। अतएव उसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कुछ कहना ही कठिन है, किन्तु आगम प्रमाणसे मालूम पड़ता है कि इसी गुण वाले सर्वाधार परमात्मासे वायु की उत्पत्ति है। श्रुति कहती है "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूता आकाशाद्वायुः।" अर्थात परमात्माके अंशरूप आत्मा और आकाश हैं। आकाशसे वायु की उत्पत्ति है। और भी

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
ख वायु र्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्यधारिणी॥

आकाशादि सारी सृष्टि ईश्वरका रूप है। उसी ब्रह्मका अंश आकाश भी है। सांख्य शास्त्र सृष्टिका आरम्भ प्रकृतिसे मानता है। सत्व-रज-तम निर्गुण ईश्वरके गुण हैं। इन्ही सत्व-रज-तमकी साम्यावस्थाको प्रकृति कहते हैं। यही प्रकृत्ति अन्य तत्वोंका उपादान कारण है। उस प्रकृतिसे महत्तत्व उत्पन्न होता है। महत्तत्व बुद्धि स्वरूप है। महत्तत्वसे अहंकार और अहंकारसे पञ्चतन्मात्राएं, पञ्चतन्मात्राओंसे ज्ञानेन्द्रिया और कर्मेन्द्रिया उन्हीं तन्मात्राओंसे स्थूल भूत इन्द्रिया होती हैं। यह सब २४ और १ पुरुष मिलकर २५ गुण या तत्व हैं।

सत्वरज स्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। प्रकृतेर्महान्। महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्रण्युभयमिन्द्रिय। तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिगुणाः॥
सांख्य दर्शन

सांख्य सृष्टिका क्रम प्रकृतिसे आरम्भ करता है। प्रकृतिसे महान, महानसे अहंकार, अहंकारसे एकादश इन्द्रिया और पंचतन्मात्राएं, पंचतन्मात्राओंसे पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति होती है। प्रकृति अव्यक्त है और महदादि तत्वोंका उपादान कारण है। बिना उपादान के कोई

कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता। पुरुष अपरिणामी है, इसीसे उसे उपादान कारण नहीं कहा गया है। प्रकृति, महत, अहंकार, इन्द्रियोंका इन्द्रियत्व, और तन्मात्राएं सब अव्यक्त हैं। उसी अव्यक्त शब्दतन्मात्रासे आकाश हुआ। उसका गुण शब्द हुआ यह भी अव्यक्त ही है। शब्दतन्मात्रा और स्पर्शतन्मात्राके संयोगसे वायु उत्पन्न हुआ और इसका गुण स्पर्श और शब्द हुआ। आकाश अव्यक्त था अब उसकी अपेक्षा वायुमें कुछ स्थूलता आयी और वह स्पर्श द्वारा व्यक्त होने योग्य हुआ। इसके बाद शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा और रूप तन्मात्राके सहयोगसे रूप तन्मात्राको लेकर तेज या अग्निकी उत्पत्ति हुई। जिसके शब्द, स्पर्श और रूप गुण हैं। वायुकी अपेक्षा तेजमें अधिक स्थूलता आयी और वह चक्षुर्ग्राह्य हुआ। उसका रूप नेत्रोंसे देखने योग्य और उष्णता स्पर्शसे अनुभव योग्य तथा चटचट शब्द कानोंसे सुना जाने योग्य हुआ। इसके बाद शब्द तन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा और रूप तन्मात्राके साथ रस तन्मात्राका सहयोग होकर अधिक स्थूल जलकी उत्पत्ति हुई। जलके गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस हैं। इसमें भार या वजन भी आया। इसके बाद शब्द-स्पर्श-रूप और रस तन्मात्राओंके सहयोगसे गन्ध तन्मात्राने मिलकर पृथ्वी महाभूतकी सृष्टि की। इसमें शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध पांचों अर्थोंकी पूर्ति है। इस प्रकार पृथ्वी पूर्ण परिणतिके साथ प्रत्यक्ष हुई।

परिभाषा—नित्य, विभु, सर्वव्यापक, निराकार विशेष पदार्थ और केवल शब्दके द्वारा अनुभवमें आने वाले महाभूतको आकाश कहते हैं।

शब्द गुण माकाशम्

शब्दगुणके द्वारा उसकी अभिव्यक्ति होती है, इसलिये शब्द ही उसका गुण है। शब्द ही उसकी विशेषता है। महर्षिकणाद कहते हैं कि

"ते आकाशे न विद्यते" अर्थात् गन्ध, रस, तेज और स्पर्श गुण आकाशमे नहीं हैं। बात यह है कि कणादने महाभूतोकी गणना महान स्थूल पृथ्वीसे आरम्भ की है और पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुके क्रमसे आकाशके वर्णनमे आये हैं। इसलिये उन्हे स्पष्ट करना पड़ेगा कि पहले कहे हुए महाभूतोके गुण इसमे नही हैं और हो भी कैसे सकते हैं, आकाशकी घटनामे उनकी उपस्थिति ही नही है। जो वस्तु प्रत्यक्ष नहीं है, उसकी सिद्धिके लिये अनुमान और आगम प्रमाण ही सहारा है। आगम प्रमाण हम पहले दे चुके हैं। अब यदि कोई कहे कि आकाश तो दिखाई नही पड़ता फिर यह कैसे माना जाय कि शब्द गुण आकाशका है। इस पर वैशेषिक परिशेषानुमानका सहारा लेकर कहते हैं कि जब यह शब्द गुण पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुमे से किसीका मुख्य गुण नहीं; क्योंकि उनमे यह गुण परम्परासे आया है तब अन्तमे इसका आदि आश्रय केवल आकाश ही बचता है, अतएव उसीका गुण सिद्ध होता है। कार्यमें कोई गुण आनेके लिये कारणकी आवश्यकता होती है। इसीसे कणाद कहते हैं "कारण गुण पूर्वका कार्य गुणो दृष्टः"। यदि कोई कहे कि शब्द तो किसी स्थूल द्रव्य वंशी, नगाड़े आदि द्वारा होता है तो उन्हींका यह गुण क्यों न माना जाय? तो इसका उत्तर यह है कि यदि उनका यह गुण होता तो आघात या स्पर्शसे मृदु, मन्द्र, तीव्र आदि भिन्न भिन्न प्रकारके शब्द न निकल कर जो उसका गुणरूप शब्द होता वही निकलता। इससे स्पष्ट है कि शब्दका आधार उन द्रव्योंके अतिरिक्त परिशेषानुमानके अनुसार आकाश ही है। जो गुण कारणमे नही वह कार्यमे नहीं आ सकता। कारणके विरुद्ध कार्यान्तरका प्रादुर्भाव नही हो सकता।

कार्यान्तरा प्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः। वैशेषिकसूत्र।

गुणविवेचन—शब्द गुण आकाशका ही है इस पर दार्शनिकों मे पडा शास्त्रार्थ हुआ है। पहले तो आकाश शब्द पर दृष्टिपात करना होगा। जो शब्द अपनी शक्ति द्वारा जाति विशिष्टका बोधक होता है, उसे नैमित्तिक कहते हैं और जो शब्द अपनी शक्तिके द्वारा एक व्यक्तिमात्रमे वर्तमान धर्मविशिष्टका बोधक होता है, उसे पारिभाषिक कहते हैं। आकाश कोई एक स्थान व्यापी द्रव्य नही है, घट, विवर, गृह आदि भेदसे उसका जो भेद दिखता है वह उपाधि भेद से है। अतएव आकाश अनेक समवेत न होनेसे जब वह जाति सूचक—सामान्य पदार्थ नही तब आकाशत्व विशिष्ट बोधक आकाश शब्द नैमित्तिक नही हो सकता। आकाशत्व तो केवल एक उसी आकाश व्यक्तिमे वर्तमान है अतएव आकाशत्व विशिष्टका बोधक आकाशपदवाची शब्द पारिभाषिक सञ्ज्ञामे मानना पडेगा। इसी प्रकार "काल" द्रव्यके दण्ड, मुहूर्तादि भेदमें भेद प्रतीति है। दिक्मे पूर्व-पश्चिम आदि भेदमें भेद प्रतीति है यह भी औपाधिक है वास्तविक नही। अतएव कालत्व और दिगत्व धर्म भी एकैकमात्रवृत्ति कहाते है। इसलिये काल और दिक् सञ्ज्ञा भी पारिभाषिक है। शब्द, संख्या, परिमाण, पृथकत्व, सयोग और विभाग ये छः गुण हैं और पृथ्वी आदि मे इनमेसे सख्या, परिमाण, पृथकत्व, सयोगत्व और विभाग मौजूद हैं, तब आकाशके एक होने पर भी उसको इन वैधर्म्य सूक्ष्म दृष्टिसे नही माना जा सकता। यदि कहना ही है तो यह कहा जा सकता है कि शब्दव्याप्य सख्या, शब्दव्याप्य परिमाण, शब्दव्याप्य पृथकत्व शब्दव्याप्य सयोग और शब्दव्याप्य विभाग आकाशके वैधर्म्य है। शख, वीणा, मृदग आदिमे जो शब्दोत्पत्ति होती है वह उनमे स्वय नही है। जिस वस्तुसे शख-भेरी-वीणा आदिका निर्माण होता है उनके समवायि कारणमें शब्द नहीं है, अतएव उन वस्तुओका

जब वह गुण नही तब उनसे निर्मित शख-भेरी-वीणामें भी वह गुण रूपसे नहीं आ सकता। यदि इनमे स्वतः शब्द गुण होता तो उनका प्रत्यक्ष होते ही शब्द सुनाई पडता। उनका गुण होता तो गुण गुणी मे ही रहता। हमे क्यो सुनाई पडता। अतएव उनमे शब्द प्रयत्नसे होता है और वह किसी ऐसे आधार स्वरूप द्रव्यका गुण है जो स्पर्श और रूपसे हीन है। शब्द पृथ्वी, जल, तेज, वायुका प्रधान गुण है नही, उनमें परम्परासे आया है। फिर उस परम्पराका आधार कहा है? यदि कहें कि आत्मा या मनका गुण है, जैसे सुख-दुःखादि आत्मा या मनके गुण है तो आत्मा या मन द्वारा व्यक्त होना चाहिये। मैं जानता हू, मैं सुखी हू, मैं दुःखी हूं, उसी तरह यह भी व्यक्त होता कि मै बज रहा हू, मुझसे ही शब्द निकल रहा है, किन्तु ऐसा नही होता। इसलिये "परत्रसमवायात्" सिद्धान्तके अनुसार सिद्ध है कि शब्द आत्मा या मनका गुण नही है। इसके सिवाय सुख-दुःख वाह्येन्द्रिय ग्राह्य नही, आत्मा और मनके गुण आत्मा और मनके समान ही अतीन्द्रिय हैं, किन्तु शब्द रूप रस आदि अर्थोंके समान वाह्येन्द्रिय ग्राह्य हैं। जैसा बहरा मनुष्य सुख-दुःखका अनुभव करता है, उसी तरह वह शब्दका भी अनुभव करता। इसलिये "प्रत्यक्ष-त्वात्" सिद्धान्तके अनुसार वह आत्मा और मनका गुण नहीं होता। आत्मा और मनके गुणोका अनुभव केवल उसी शरीरी के आत्माको होता है, किन्तु शब्दका अनुभव सभीको होता है। इसलिये भी वह मन और आत्माका गुण नही है। न आत्मा और मनके साथ उसका समवायि सम्बन्ध है। यदि कहे कि दिक या कालका गुणहै तो न तो ऐसा व्यवहारमे सुना जाता है और न वे वाह्येन्द्रिय ग्राह्य हैं। शब्द श्रोत ग्राह्य है। दिक् और कालमें कोई गुण सुने नही जाते। ऐसी दशामे बच रहता है केवल आकाश; अतएव वह आकाशका ही गुण सिद्ध होता है। यह गुण सर्वत्र एक

समान पाया जाता है। रूप-रस-गन्ध-स्पर्श की तरह, उसमें प्रकार भेद नही होते। शब्दकी ध्वनियोमे जो अन्तर मालूम पडता है वह निमित्त कारण और प्रयत्नके कारण होता है। अतएव आकाश एक है। आकाशविभु अर्थात सर्व व्यापक और अनन्त है। वर्तमान विज्ञान शब्दको वायु कम्पजनित कार्य मानता है किन्तु वायु रहते हुए भी शब्द नष्ट हो जाता है। यदि वह वायुका गुण होता तो जब तक वायु रहता वह भी रहता, शब्द आकाशमे लीन हो जाता है। जो पदार्थ जिससे उत्पन्न होता है उसीमे लीन हो सकता है, यह विज्ञान सम्मत विषय है। वायु शब्दके लिये सहायक मात्र है; क्योंकि वायु की घटनामे शब्दका भी भाग रहता है। शब्द गुण वायुमें भी है; किन्तु उससे उसकी उत्पत्ति नही है। अतएव यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि शब्दका उपादान या समवायि कारण आकाश ही है।

रूप रंग—आकाशका रूप रग क्या है यह भी एक समस्या है। जब वह वाह्येन्द्रिय ग्राहय नही निराकार है तब उसका रूप रंग हो ही क्या सकता है? किन्तु प्रायः आकाश नीले रङ्गका दिखाई पडता है? कभी धुमला और कभी लाल भी दिखता है, इसका क्या कारण है? बात यह है कि आकाशका अपना कोई रङ्ग नहीं है। जहां कोई रङ्ग नहीं वहां काला रङ्ग दिखता है और जहाँ सब रङ्ग एकमे मिल जाते हैं वहां सफेद रङ्ग हो जाता है। आकाशमे जो रङ्ग दिखता है यह छायाके कारण है। सूर्यकी किरणे यदि स्वच्छ आकाशसे पतित हो और बीचमें बादल न हो तो आकाश सफेद दिखता हैं यदि बादलो की रुकावट हो तो धुमला काला दिखेगा। यदि सूर्य की किरणे बादलो पर पडे तो शाम सवेरे उसमे ललाई रहेगी। शुद्ध आकाशका कोई रङ्ग नहीं। घडेके भीतर, मकानके भीतर, खाली स्थानमे जो आकाश रहता है

उसका कोई रङ्ग नहीं रहता। इसी प्रकार आकाशका कोई रङ्ग नहीं होता।

व्यापकता—आकाश शब्दवान होनेसे, गुण वाला होनेसे गुणी है, अतएव द्रव्य है। आकाशका कोई समान जातीय या असमान जातीय द्रव्य न होनेके कारण तथा निरवयव और निरपेक्ष होनेके कारण वह नित्य है। वह आकाश कर्णकुहर रूप उपाधि युक्त होने पर श्रोत्र रूपसे शब्द प्रत्यक्षका कारण होता है। शब्द मूलक उपभोग पुरुषके अदृष्टकी अपेक्षा रखता है अतएव दूर दृष्ट कारणसे जिसकी इन्द्रियमें विकलता प्राप्त होती है, उसके भोगरूप शुभादृष्टके अभावसे बधिरता प्राप्त होती है। इसीलिये कर्ण विवरकी तुल्यता रहने पर भी कोई श्रवणशील होता है और कोई बिधिर होता है। इसमे शारीरिक बनावट विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट विपरीत कारण भी सहायक होते हैं।

अहकारसे तन्मात्राए और उनसे आकाश कैसे बना यह प्रश्न हो सकता है। किसी भी कार्यके होनेके लिये मुख्य कारणके प्रतिकूल कुछ सहायक कारण हुआ करते हैं। काल और कर्म उनमेसे एक सहायक कारण है। अहकारका तमोगुण अवधिके सयोगसे क्रियात्मक हो उठा, परब्रह्मके सकेतका काल आया। प्रकृतिसे महत्तने आकर कर्मयोगकी प्रेरणा की, उससे जड रचनात्मक क्रियाका सूत्रपात हुआ, अवधिका संयोग मिला। अन्धकारमे कर्ता, क्रिया, कर्मने जागृति उत्पन्न की; फिर कर्ता, क्रिया, कर्मका साधार संयोग पाकर उस जागृतिसे शब्दकी उत्पत्ति हुई। वही शब्दतन्मात्र आकाशके रूपमें चारो ओर छा गया। तमोगुण अन्धकार रूप है, उसमे जब रजोगुणने जोर मारा तब अन्धकार और प्रकाशका मेल हुआ। कालकी उत्पत्ति भी रजोगुणसे हुई, उसके रजोगुणमे तमोगुण अधिक है। इसलिये

आकाश और शब्दमे विशेष अन्धकार और कुछ प्रकाश है। आकाशके अभिमानी रजोगुणका रूप ही शब्द है। आकाश वायुसे सूक्ष्म और विस्तारमे अनन्त है। आकाश वायु, तेज, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र सबको धारण करने वाला है। वायु आकाशमें बह रहा है, मेघ बह रहे और मडरा रहे हैं, तारे चमक रहे हैं। वृक्ष भूमिसे उग कर आकाशमे झूम रहे हैं, चिड़िया आकाशमें चहक रही है, और सभी जीवधारी आकाशमें मंडरा रहे हैं। थोड़ा सा आधार भूमिका रहता है, शेष अधिकाश अग आकाशमे ही रहता है। धारण आकाशका सतोगुण स्वभाव है। आकाशके बिना शब्द नहीं रह सकता, नही हो सकता। जब तक वाद्ययन्त्रमें पोलापन नहीं होता, तब तक वह शब्द नहीं करेगा। शब्द सुनने वाले कान पोले हैं, शब्द करने वाला मुह पोला है। वायुके बहने, अग्निके चटचटाने, मेघोंके गरजने, नदियोके घहराने, पिण्डोके टकराने, भूकम्पके गड़गड़ाने, पृथ्वीके टूटने, फूटने, वृक्षोंके हरहराने, अण्डजोंके फड़फड़ाने, साप आदिके सरसराने, स्वेदजोंके सुरसुरानेका शब्द तथा विश्व ब्रह्माण्डमे होने वाले अन्य सार्थक और निरर्थक शब्द आकाशतत्वके रजोगुणसे पैदा होते हैं। आकाशका धारण स्वभाव है, यही उसका सतोगुण है। इसीसे धारणा शक्ति, स्मरणशक्ति और बोध शक्तिको बल मिलता है। यह आकाशके सतोगुणका फल है। सतोगुणके धारणमें तमोगुणका योग होनेसे रजोगुण जोर मारता है और शब्द होता है। अन्धकार आकाशका तमोगुण है, अहंकार और कालके सयोगसे आकाश बना है। इसी आकाशका तमोगुण स्वरूप मनुष्योमे शोक है। महाकाशके अन्तर्गत अनन्त आकाश है। चाहे घटाकाश हो चाहे मठाकाश वा अन्य आकाश हो सब आकाशके अन्तर्गत हैं। मुहसे लेकर गुदातक के महास्रोतमे आकाश है। धमनी, सिरा, रोमरन्ध्र, अन्य स्रोतस सबमे आकाश है। अस्थियोके पोले भागमे आकाश है। त्वचामे आकाश

है। यह सब शरीर महाकाश है। उदराकाशसे निकलने वाले अपान-वायुमें शब्द है; रक्तके चलनेमें शब्द होता है। वातवह नाड़ियां, ज्ञाननाड़ी और कर्म नाड़ियोंकी गतिको आकाशका बल न मिले तो वे कार्यक्षम न हों। शरीरमें धारण और स्मरणशक्ति शक्ति पूर्ण न हो, शब्द रजोगुणसे और उसका अवबोध सतोगुणसे होता है। दुःख, शोक तमोगुणसे आकाशके भागमें चैतन्य, जागृति, रचनात्मक प्रवृत्ति, रचनात्मक शक्ति, कर्मवार शक्ति एवं शोक, शब्द सब आकाशमें बल पाते हैं। आकाश बाह्येन्द्रियोंसे नहीं दिखाई पड़ता, उसी तरह उसके ये शक्तिप्रद कार्य भी इन्द्रियोंसे नहीं दिखाई पड़ते। आकाशमें नीलिमा भासित होती है, वह भी तमोगुण-के प्रभावसे है; क्योंकि आकाशमें तमोगुणका अंश अधिक है। सूर्यके तेजसे तमोगुण प्रभावित होता है और आकाशमें रङ्ग भासित होता है। वह रूप सूर्यके तेजका है। जब सूर्यका तेज प्रभाव डालनेको नहीं रहता तब रातमें अन्धकार ही अन्धकार दिखता है। आकाश विभु है और उसका विभुत्व विश्वमें तथा हमारे शरीरमें अहर्निश प्रतिभासित होता रहता है।

२ वायु

१ वायुत्वाभिसम्बन्धात् वायुः

२ स्पर्श संख्या परिमाण पृथक्त्व संयोग विभाग परत्वा-परत्व संस्कारवान्। (वेगवान्)

३ स्पर्शोऽस्य अनुष्णाशीतत्वे सति अपाकजः।

४ गुण विनिवेशात् सिद्धेः

५ अरूपिषु अचाक्षुषवचनात् सप्त संख्यादयः

६ तृण कर्मवचनात् संस्कारः

७ स चाय द्विविधः अणुकार्य भावात्। तत्र कार्य लक्षण-श्चतुर्विधः, शरीरम्, इन्द्रियं, विषयः, प्राण इति।
८ तत्र अयोनिजमेव शरीर मरुतां लोके पार्थिवावयवोपष्ट-म्भाच्चोप भोगसमर्थम्।
९ इन्द्रिय सर्वप्राणिनां स्पर्शोपलम्भकं
१० पृथिव्याद्यनभि भूतै र्वाय्ववयवैरारब्ध सर्व शरीरव्यापि त्वगिन्द्रियम्। विषयस्तू पलभ्यमान स्पर्शाधिष्ठान भूतः स्पर्श शब्द धृति कम्प लिङ्ग, तिर्यग्गमन स्वभावकः मेघादि प्रेरण धारणादि समर्थः।
११ तस्य अप्रत्यक्षस्यापिनानात्व सम्मूर्छनेनानुमीयते।
१२ सम्मूर्छन पुन समान जवयोर्विरुद्धदिक् क्रिययोर्वाय्वोः सन्निपातः।
१३ सोऽपि तृणादि गमनेनानुमितेन सावयविनोरुद्ध्व गमनेनानुमीयते।
१४ प्राणोऽन्तः शरीरे रस मल धातूनां प्रेरणादि हेतुरेकः सन् क्रियाभेदात् प्राणापानादि संज्ञां लभत इति।

उत्पत्ति—यह पहले लिखा चुका है कि वायुकी उत्पत्ति आकाशसे है। अर्थात आकाशका शब्द तन्मात्र और वायुके स्पर्शतन्मात्रके सयोगसे स्पर्शवान वायुकी सृष्टि हुई। आकाशके रजोगुण, अहकार और कालको प्रकृतिगत चैतन्यसे प्रेरणा मिली, जिससे क्रिया-कर्म की प्रवृत्ति हुई और रजोगुणका विशेष वल पाकर उसके स्वभाव से धावन और शोषणशक्तिको उत्तेजित करते हुए वायुका प्राकट्य हुआ। स्पर्श तो वायुका प्रधान गुण है। शब्द उसमे आकाशसे आया। धावन और शोषण रजोगुणके कारण प्रकट हुआ। इससे अनन्त वल पाकर वह अपने जनक आकाशकी गोदमे वहने

ओर फैलने लगा। उसका विस्तार अनन्तसीमा तक है। वह अपने वहनशीलताके प्रभावसे शब्द, जल, अग्नि, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह, पिण्ड, ब्रह्माण्ड आदि सबको स्पर्श करने लगा। स्पर्श द्वारा सब पर अपने शोषण शक्तिका प्रभाव डालने लगा।

परिभाषा—इस प्रकार वायु की परिभाषा यों होती है। वायु वह पञ्चमहाभूत है जो आकाशसे शब्द और अपने तन्मात्र स्पर्श सहयोग से रूप रहित किन्तु स्पर्शवान है। वायुमे समवाय सम्बन्धसे वायुव जाति है। अतएव उसमे स्पर्श, सख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और वेगनामक संस्कार है।

साधर्म्य—वायु नव गुणवाला गुणी है। अतएव द्रव्य है। प्रयत्न न होते हुए भी द्रव्य है। क्योंकि यदि वह द्रव्य न होता तो उसके गुणकर्म उसमे कैसे आते? गुणकर्म तो द्रव्याश्रित ही रहते हैं। इन्ही संस्कारोंके कारण वह गुणी है और द्रव्य है। वायुका साधर्म्य स्पर्श है; किन्तु यदि कहा जाय कि साधारण स्पर्शवत्व इसका साधर्म्य है तो पृथ्वी आदिमे भी स्पर्शवत्व प्रभृति धर्म हैं। इसलिये अति प्रसग होगा। इससे यही कहना अच्छा है। कि स्पर्श विशेष ही वायुका साधर्म्य है। अर्थात अनुष्ण और अशीत एव अपाकज स्पर्श ही वायुका साधर्म्य है। अर्थात जो स्पर्श न तो उष्ण है, न अशीत है और तेज या अग्निके सयोगसे जो स्पर्श उत्पन्न नही हुआ इस प्रकार का विशिष्ट स्पर्श ही वायुका साधर्म्य है। तेजका स्पर्श अशीत और अपाकज होने पर अनुष्ण नही है। इसलिये अनुष्ण पदसे तेजका निवारण हुआ। जलका स्पर्श अनुष्ण और अपाकज होने पर भी अशीत नही है, इसलिये अनुष्ण और अशीत पदसे जल का निवारण हुआ। पृथ्वीका स्पर्श अनुष्ण और अशीत होने पर भी अपाकज नहीं है; इसलिये अपाकज पदसे पृथ्वीका वर्जन हुआ। इस

प्रकार वायुका साधर्म्य अनुष्ण, अशीत और अपाकज स्पर्श सिद्ध हुआ।

योगवाहित्व—पृथ्वी जल आदि तत्त्वप्रधान द्रव्योंको हम हाथ से छूकर स्पर्श कर सकते हैं; किन्तु वायु अदृश्य पदार्थ होनेके कारण पकडमें नहीं आता। हां, जब वह चलता है तब हमारी त्वचासे उसका स्पर्श होकर उसका अस्तित्व मालूम पड़ता है। इसके अनुष्ण अशीत स्पर्शका मिलना सहज नहीं है यदि बर्फीली जगहमें या जलाशयके पासके वायुका स्पर्श हो तो वह शीतल मालूम पड़ेगा और यदि सूर्य की गर्मी या अग्निके प्रभावसे प्रभावित वायुका स्पर्श हो तो वह उष्ण मालूम पड़ेगा। वायु योगवाही होनेसे उसपर उष्ण और शीत दोनोंका असर तुरन्त होता है। यही नहीं गन्ध पृथ्वीका गुण है; अतएव वायुमें कोई गन्ध नहीं है; किन्तु यदि किन्हीं सुगन्धित पुष्पोंमें स्पर्श कर वायु आवे यो वह सुगन्धित मालूम पड़ेगा और यदि किसी दुर्गन्धित जगहसे सडे पदार्थ या सड़े मुर्देकी ओरसे वायु आवे तो वह दुर्गन्धित मालूम पड़ेगा। इसका कारण यही है कि वायु योगवाही है, जैसे पदार्थके गुणका योग मिले उसे ही वह ग्रहण कर लेता है। इस शक्तिका हमारे शरीरमें बड़ा उपयोग होता है। उदरस्थ वायुमें जो मलिनता होती है उसे वह अपान वायुके द्वारा निकाल देता है और आमाशयगत विकृत वायुको डकारके साथ निकालता है। फेफडोंके अशुद्ध वायुको प्रश्वास द्वारा बाहर कर देता है और प्राणवायुके द्वारा सारे शरीरमें शुद्ध वायु पहुँचाता है।

अपाकज और नित्यत्व—वैशेषिक दर्शनके अनुसार परमाणुओंमें पाक होकर रूप और रूपान्तरोंकी उत्पत्ति होती है। द्व्यणुकादि अवयवीमें पाक और पाकज स्पर्शादिकी उत्पत्ति स्वीकार नहीं की जाती। वायु द्व्यणुक द्रव्य है फिर भी उसमें अपाकज संस्कार बतलाया

गया है। इसका समाधान यह है कि वायुका अपाकज धर्म अग्नि द्वारा पाक होने वाला नहीं है। बल्कि उसका यह मतलब है कि वायुका अपाकज धर्म वह है जो द्रव्य विभाजक धर्म पाकज स्पर्शके आश्रयमे वर्तमान नहीं रहता। घटादिमे जो द्रव्य विभाजक धर्म है वह पृथ्वीत्ववाला धर्म इस परमाणुमे भी रहता है। इसलिये वह पाकज स्पर्शके आश्रयमे वर्तमान न रहने वाला धर्म नहीं कहा जा सकता। उस प्रकारका धर्म तेजत्व, वायुत्व, और जलत्व हो सकता है। इसलिये अनुष्ण और अशीत पदसे तेज और जलको अलगाया गया है। अब इसके बाद अनुष्ण और अशीत और अपाकज धर्मका समानाधिकरण स्पर्श आश्रय वायु ही रह जाता है। अपाकज पदका सीधा अर्थ पृथ्वीमें न रहने वाला किया जा सकता है।

वायु नित्य और अनित्य दोनो प्रकारका है। जो वायु परमाणु रूप है वह अनित्य है। और जो कार्यरूप अर्थात लौकिक और शरीरस्थ वायु है वह अनित्य है। यदि वायुको अणुपरिमाण ही माने तो उसका स्पर्श प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। क्योकि महत्व इसका कारण कहा गया है। वायवीय शरीर अयोनिज होता है; क्योकि उसकी शुक्र-शोणित सम्पर्कके बिना ही उत्पत्ति होती है। कहते है कि वायवीय शरीर वायुसे होता है। वायवीय शरीर केवल वायु द्वारा निर्मित होनेके कारण उससे धारण, आकर्षण, प्रभृति होना असम्भव होता है। उसके द्वारा भोग सम्भव नहीं। अतएव पार्थिव अशके संयोगसे ही वह उपभोगके योग्य होता है। पार्थिव शरीरोपयोगी वायु ही हमारे शरीरका सञ्चालक है।

वायवीय इन्द्रिय—वायुका स्पर्श जिस इन्द्रियके द्वारा होता है वह त्वगेन्द्रिय है। इसे वायवीय इन्द्रिय कहना चाहिये। यह इन्द्रिय पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश आदि द्वारा अनभिभूत वायवीय अवयवसे

निर्मित है। महत्वगिन्द्रिय सर्व शरीर व्यापी है। यद्यपि हाथ पांव और शरीरके बाहरी त्वककी ही व्यवहारमें त्वक् कहा जाता है तथापि शरीर के भीतर की भिल्लिया और आशयोंकी दीवालें भी त्वक् ही हैं। जहा जहा स्पर्शका अनुभव हो वहां समझ लीजिये कि त्वचा है। केश, नख. दन्त आदि शरीरके पदार्थ अवयव नहीं: ये तो शरीरकी उत्पत्तिके बाद उत्पन्न होते हैं। अतएव इन्हें छोड़ अन्यत्र त्वचाकी सर्व व्यापकता है। जितना साक्षात्कार योग्य स्पर्श है, वह सब वायवीय विषय है। वायवीय त्रसरेणुका स्पर्श भी साक्षात्कारके लिये योग्य होता है. इसलिये त्रसरेणुसे ही वायवीय विषय लेना होगा।

वायुका प्रत्यक्षीकरण—वायुमें रूप न होनेसे उसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो सकता। अनुमान द्वारा ही उसकी सिद्धि हो सकती है। जब वायु वेगसे चलता है तब उसमें शब्द होता. पेड़ोंके पत्ते और छोटी डालिया हिलने लगती हैं, उनके हिलने से भी एक शब्द होता है। इस प्रकार शब्द द्वारा उसका अनुभव होता है। शरीरमें आकर जब वायुका स्पर्श होता है तब स्पर्श द्वारा उसका अनुभव होता है। पेड़की डालिया हिलती हैं। झुकने झूलने लग जाती हैं, तब नेत्रों द्वारा उसके कार्यको देखकर वायुका अनुभव होता है। जिस समय वायुकी गति स्पष्ट नहीं होती, उस समय पङ्खा झलने या कपड़ेसे हांकने से वायुका स्पष्ट स्पर्श होकर अनुभव होने लगता है। यह द्रव्याश्रित अनुभव है। वायुके वेगसे "उत्पन्न मर्मर" शब्द तथा किसी वेगवान वस्तुके द्वारा सनसनाहटका शब्द, किसी दो पदार्थोंके आघातसे धपधप शब्द, किसी पदार्थ को तोड़ने पर चटचट वा फटफट शब्द वायुको प्रत्यक्ष बनाने वाले हैं।

वायुकी गति—वायुकी वक्रगति प्रसिद्ध है। अतएव वायुको वक्र स्वभाववाला कह सकते हैं। यदि वायु किसी कारणसे सीधी

गति उत्पन्न की जाय तो वह प्रयत्न द्वारा उत्पन्न होगी। वायुकी स्वाभाविक गति नहीं। वायु आकाश मार्गमें बादल और कुहरेको धारण करता और चलाता है। आकाशमें उसका अनन्त विस्तार है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र वायुके प्रभावसे अपनी गति करते हैं। नक्षत्र और ग्रहोंमें जो आकर्षण शक्ति है वह भी वायुके प्रभावसे है। गतिशीलताके कारण ही वायुमें स्पर्श, धावन और शोषणकी शक्ति है। कहीं वायु घना है कहीं, सूक्ष्म, पृथ्वीके निकट वायु घना है, ज्यों ज्यों, ऊपर जायँ त्यों त्यों वह सूक्ष्म और पतला होता जाता है, यहां तक कि पृथ्वीसे ४५ मील ऊपर जाने पर वायुका अनुभव मनुष्योंको कठिनाईसे होता है, जितने अधिक ऊँचे पहाड़ होंगे वहांका वायु उतना ही पतला और हल्का होगा। वायु सूक्ष्मसे सूक्ष्म स्थानमें पहुँच जाता है। थोड़ा वायु भी एक बड़े कमरेमें फैलकर समा जायगा और उसमें कई गुणा अधिक वायु भी उससे छोटे कमरेमें समाकर फैल जायगा। वायु यद्यपि अनुष्ण और अशीत है तथापि उसमें गतिके घर्षणसे उत्पन्न अग्नि उत्पादक शक्ति है, इसीलिये तो वायुसे अग्निकी उत्पत्ति कही गयी है। वायुके स्पर्शसे अग्निमें तीव्रता आती, उसमें प्रज्वलन शक्ति बढ़ जाती है; क्योंकि वायुसे ही तो उसकी उत्पत्ति है। अग्निका जलना अधिकतर वायुके ही कारण होता है। वायुके बिना अग्नि बुझ जाता है। अर्थात वह वायुमें लीन हो जाता है, जहाँसे आया था वहीं मिल जाता है। पृथ्वीकी उष्णता या शीताधिक्यको वायु साम्यावस्थामें लानेमें सहायक होता है, कोई गरम चीज हवामें रख दीजिये, थोड़ी देरमें वह ठण्डी पड़ जायगी। क्योंकि वायु योगवाही होते हुए भी और अनुष्ण तथा अशीत स्पर्श होने पर भी स्वभावतः शीत गुण उत्पन्न करने वाला है। शब्द और सुगन्धिको हमारे इन्द्रिय प्रत्यक्ष करनेमें वायु ही सहायक है, वह शब्द लहरी और सुगन्ध या दुर्गन्धिकणोंको वहन कर अपने वेग द्वारा हमारे कान और नाक तक

पहुँचाता है। प्रकाशकी किरणें भी वायुके साथ हमारे नेत्रों तक पहुँचती हैं। हम सांस लेकर बाहरका शुद्ध वायु शरीरके भीतर पहुँचाते हैं और भीतरका अशुद्ध वायु बाहर कर शरीरको शुद्ध और कर्तव्यशील बनाते हैं। यह वायुकी गतिका ही प्रभाव है। यदि वायु पश्चिम चलेगा तो उसकी गति पूर्व को होगी। अर्थात पश्चिमी वायु बहने पर वृक्षोंके पत्ते पूर्व की ओर झुकेंगे, पूर्वसे आने वाले वायुके कारण पश्चिम की ओर झुकेंगे, इसी तरह अन्य दिशामें समझें। वायुकी उभयवाही गति होने पर पेड़के पत्ते अपनी ही जगह हिलेंगे किसी ओर झुकेंगे नहीं। इससे वायुके प्रकारोंका अनुमान होता है।

वायुके गुण और कर्म—वायुमें रूक्ष, लघु, शीत, दारुण, खर और विशद गुण हैं। इसीलिये रूक्ष गुण वाले पदार्थ खानेसे शरीरमें रूक्षता बढती है, लघु गुण वाले पदार्थ सेवन करनेसे शरीर हल्का होता है। शीत गुण पदार्थ सर्दी और कफ उत्पन्न करते हैं, दारुण पदार्थ शरीरको कठोर और बेडौल करते हैं। खर पदार्थ शरीरमें खरखरापन, रूसी या चेली सी निकालते हैं, विशद पदार्थ शरीर स्वच्छ करते हैं, किन्तु वायु कर पदार्थ अधिक सेवन करनेसे शरीरमें वायुकी वृद्धि होती है। किन्तु इनके विपरीत स्निग्ध, गुरु, उष्ण, मृदु, पिच्छिल, श्लक्ष्ण, स्थूल और स्थिर गुण वाले पदार्थ सेवन करनेसे वायु जनित विकार दूर होते है और जिस गुण वाले पदार्थ होंगे वे अपनेसे विरुद्ध गुण पर असर डालेंगे। यदि रूक्ष प्रकृति वाला मनुष्य रूक्ष पदार्थ सेवन करे तो रूक्षताकी वृद्धिके साथ वायुका प्रकोप बढेगा; और उसकी शान्ति स्निग्ध पदार्थोंसे होगी। इसी प्रकार प्रकोपकारी गुणके विरुद्ध गुणके पदार्थोंसे शान्ति होती है।

शरीरके समस्त तन्त्र और व्यवस्थाको वायु ही धारण करता है। यह प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान भेदसे पाच प्रकारका है। सब

प्रकार की ऊँची या नीची नाना विध चेष्टाओं और क्रियाओंका प्रवर्तक है। मनको चलाने वाला और नियममें रखने वाला है। सब इन्द्रियोंको प्रेरणा करने वाला है। सब इन्द्रियों तक विषयोंको पहुँचाता, शरीरके सब धातुओंका एक व्यूह बनाता, शरीरके अवयवोंको मिलाता, शरीरको गति देता और चलाता है। वाणीको प्रवृत्त करना, शरीरमें स्थित शब्द और स्पर्शका ज्ञान कराता है। इसीलिये श्रोत्र और इन्द्रियोंका कारण हैं। हर्ष और उत्साहको उत्पन्न करना, अग्निको प्रदीप्त कर जठराग्निको बढाता है। शरीरमें क्लेद बढ़ने पर दोषोंको सुखाता है, मलमूत्र आदि मलोंको निकालता और वेगोंको उत्पन्न करता है। स्थूल और सूक्ष्म स्रोतों, गला, नासिका आदि छिद्रोंका विभाग करता है, गर्भकी आवृति बनाता और अपनी गतिसे जीवधारियोंका जीवन बनाये रखता है। इस प्रकार अकुपित वायु शरीरका संरक्षक है।

यही वायु कुपित होनेपर शरीरको नाना प्रकारके विकार और दुःखोंमे पीडित करता है। बल, वर्ण, सुख, आयुका नाशक होता है। मनको बेचैन करता, इन्द्रियोंको नष्ट करता, गर्भको विकृत करता या नष्ट करता है, गर्भमें अंगोंके विकार कुबडापन, अन्धापन, बहरापन, बालप्रसव आदि करता है, विगुणता उत्पन्न करता, नियत कालसे अधिक गर्भको रोकता है। और भय, शोक, मोह, दीनता, प्रलाप, बकवाद उत्पन्न करता यहां तक कि प्राणोंको नष्ट कर देता है।

पृथ्वीका धारण, अग्निका प्रज्वलन, मेघवर्षण कार्य वायुसे ही होते हैं। झरनोंको और सोतोंको नदियोंमे ले जाना, फलफूल खिलाना, बीज अंकुरित करना, ऋतुओंका विभाग करना, धातुओंमें भार और आकार बनाना, अन्न, वनस्पति, वृक्षोंको बढ़ाना, गीलेपनको सुखाना वायुका काम है। बाह्य प्रकुपित वायु पहाडोंकी चोटियोंको गिराता, वृक्ष उखाड़ फेकता, समुद्रोंको क्षुब्ध करता, तालाबोंमें जल बढाता,

नदियोंके प्रवाहको पलटाता, भूकम्प पैदा करता, बादलोंको टकराता, तुषार और ओले गिराता, बिजली गिराता, अनाजको निर्बल करता, आकाशसे रेत, धूल, मछली, मेंडक, सांप, क्षार, रक्त बरसाता और प्रलय कालमें बादल, सूर्य, अग्नि और वायुको प्रेरित करता है।

यह वायु प्राणियोंके उत्पत्तिका कारण, विलयस्थान तथा जन्म और विनाशका कारण है। सब दुःखोंका कर्ता, मृत्यु, यम, नियन्ता, प्रजापति, अदिति, विश्वकर्मा, विश्वरूप, सर्वव्यापक, शरीर धारक, सूक्ष्मसे सूक्ष्म बड़ेसे बड़ा विष्णु है सब लोगोंमें व्यापक भगवान वायु ही है।

चिकित्सा शास्त्रमें वायु बहुत बलवान, बहुत कठोर, अतिशीघ्र कारी, अतिचञ्चल पैर अतिदुःखदायी कहा गया है। इसे जानकर ही वैद्य रोगीको बचा सकता है। वायुका यथार्थ ज्ञान आरोग्य लाभ, बल, कान्ति, तेज और शक्तिको बढ़ाने वाला, ज्ञान वृद्धिकर दीर्घायु प्राप्त कराने वाला है। शुद्ध वायु पित्त और कफ तथा उनके कार्योंमें सहायक होता है। जिससे तीनो वात-पित्त-कफको प्रकृतिस्थ स्वास्थ्य, बल, वर्ण, सुख और दीर्घायुष्य प्रदान करता है।

वायुके भेद—वायुके रजोगुणसे शरीरस्थ प्राणवायुके पाँच भेद हो जाते हैं। प्राण, अपान, सामान, उदान और व्यान इन पाँचों वायुओंके अलग अलग कर्म स्थान हैं।

> हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिसंस्थितः।
> उदानः कण्ठ देशस्थो व्यानः सर्व शरीरगः॥

संक्षेपमें उनके कार्य भी इस प्रकार हैं—

> अन्न प्रवेशनं मूत्रा द्युत्सर्गोऽन्नादि पाचनम्।
> भाषणादि निमेषाश्च, तद्व्यापाराः क्रमादमी॥

सबका संक्षिप्त परिचय नीचे लिखे अनुसार है।

१ प्राण वायु—शरीरके, भीतर रस, मल, और धातुओंको प्रेरणा करना इसका काम है। मुख और नासिकाके द्वारा शुद्ध वायुको भीतर ले जाना अशुद्ध वायुको बाहर निकालनेमें सहायता करना प्राणवायुका काम है। श्वास-प्रश्वास क्रिया इसीके द्वारा सम्पादित होती है। इसका मुख्य निवास स्थान हृदय है।

२ अपान वायु—मल, और उदरस्थ दुर्गन्धित विकृत वायुको गुदमार्ग द्वारा बाहर निकाल, मूत्र प्रवर्तित करना, दोषोंको अधः प्रवर्तित करना, विसर्जनक्रिया सम्पादित करना, अपान वायुका काम है। इसका मुख्य स्थान पक्वाशय और मल द्वार है।

३ समान वायु—जो वायु शरीरमें समानता सम्पादन करता है, उसका नाम समान वायु है। पाकस्थली और जठरानलका सर्वरूपसे वितरण करता है। इसका मुख्य स्थान नाभि स्थान है।

४ उदान वायु—जो वायुके भीतरी दोषोंको तथा कार्योंको ऊर्ध्वगामी करता है, ऊपर उठाता है उसे उदान वायु कहते हैं। भोजनके रसको रसाकर्षण करना इसका काम है। इसका मुख्य स्थान कण्ठदेश है।

५ व्यान वायु—जो वायु नाडियोंके मुखसे विस्तृत होकर सारे शरीरमें व्याप्त है उसे व्यान वायु कहते हैं।

६ गुणानुसार प्रभाव—वायुके सतोगुणसे स्पर्श करना, छूना, छेड़ना, मिलना और मिलाना ये कार्य होते हैं। वायुके तमगुणसे-खरखरापन करना, शोषण करना, लेना, खींचना और आकर्षण करना ये काम होते हैं। वायुके रजोगुणसे-बहना, फैलना, घूमना,

उत्पत्ति—आकाशकी शब्दतन्मात्रा और वायुकी स्पर्शतन्मात्राको मिलाकर तेजसकी रूपतन्मात्राने तेज अर्थात अग्निको प्रकट किया। इसलिये अग्निमे शब्द, स्पर्श और रूप तीनो विषयोंकी विद्यमानता है। आकाशके रजोगुण और वायुके सतोगुणसे मिलकर अहङ्कार काल रचनाके सहयोगसे एक जागृति की उत्पत्ति हुई। उस जागृतिमे तमोगुण प्रकाशक क्रिया-कर्मका प्रभाव पडा। जिससे प्रकाशका आविर्भाव हुआ। उस प्रकाशमे अवधि प्रकाश, कर्ता-प्रकाश, क्रिया प्रकाश, कर्मप्रकाशके साथ रजोगुण प्रकाशने प्रखरता ला दी और अग्निकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार रचनात्मक कर्म और सतोगुणके प्रकाशके सयोगसे तेजस अग्नि प्रकट हुआ। तेजके साथ तमोगुणके प्रभावसे अग्निमे दाहक शक्ति आयी। इस प्रकार अग्निके सतोगुणसे प्रकाश, रजोगुणसे तेज और तमोगुण की शक्तिके स्वभावसे दाहकता गुण स्थिर हुआ।

परिभाषा—तेजत्वजाति सम्बन्धित रूप और उष्ण स्पर्श गुण युक्त तृतीय पञ्चमहाभूतको अग्नि कहते हैं। यद्यपि साख्यतत्व कौमुदी मे लिखा है कि "शब्द-स्पर्शस्तन्मात्र सहिताद्रूपतन्मात्रात् तेजः, शब्द-स्पर्श-रूपगुणम्" इससे इसके गुणोंमे शब्द की भी गणना होनी चाहिये। परन्तु मालूम पडता है कि शब्दगुण केवल मात्र आकाशका होनेके कारण अन्य आचार्योंने उसमे शब्द गुणका उल्लेख नहीं किया। तर्क सग्रहमे "उष्ण स्पर्शवत्तेजः" लिख कर परिचय दिया है। वैशेषिक कारने "तेजो रूप स्पर्शवत्" लिखा है और आयुर्वेद दर्शन कारने भी "तेजोरूपस्पर्शवत्" को ही दुहराया है। प्रशस्तपाद भाष्यमें "तेजस्त्वाभि सम्बन्धात् तेजः" कह कर परिभाषा की है। जिसका मतलब हुआ कि जिसमे तेजत्व जातिका सम्बन्ध हो उसे तेज कहना चाहिये। यही नही आगे उसके सस्कारो की गणना

करते हुए "रूप स्पर्श संख्या परिमाण पृथक्त्व संयोग विभाग परत्वा-परत्व द्रवत्व संस्कारवत" कह कर रूप और स्पर्श गुणोंको ही संख्यादि के साथ गिनाया है। यहां स्पर्शसे मतलब उष्ण स्पर्शसे ही है।

अग्निका साधर्म्य—अग्निका मुख्यगुण रूप है। तैजस होनेके कारण उस रूपमें चमक होना स्वाभाविक है। इसलिये अग्निका स्वरूप दीप्तिमान शुक्ल अर्थात श्वेत है। साथ ही भास्वर वर्ण भी है। अर्थात बहुत चमकदार दमदमाता हुआ। अग्निके रङ्गमें एक दमक है। जल और पृथ्वीमे भी रूपकी उपलब्धि होती है, अतएव रूपको अग्निका ही विशेष गुण क्यों समझा जाय, यह प्रश्न है। पृथ्वी तत्व प्रधान द्रव्योंमे भी शुक्ल पीत आदि रङ्ग देखे जाते है, जलमें भी सफेदी का रङ्ग है। यदि अग्निका वर्ण शुक्ल श्वेत ही कहा जाता तो जलके रूपसे टक्कर खाता: किन्तु शुक्लके साथ भास्वर कह देनेसे तेज साधर्म्यकी जलके साथ निवृत्ति हो गयी। अब रही बात पृथ्वी की। सो पृथ्वीमे केवल शुक्ल वर्ण ही नहीं अन्य वर्ण भी होते है, दूसरे पृथ्वी मे जो सफेदी है वह भास्कर शुक्ल नहीं अभास्वर शुक्ल है। अग्निके चमचमाते हुए श्वेत रङ्गकी तुलना पृथ्वीके रङ्गसे कहा हो सकती है? इसलिये सिद्ध हुआ कि भास्वर शुक्लत्व न तो पृथ्वीमे है और न जलमे अतः अग्निका साधर्म्य भास्वर शुक्लत्व रूपका सिद्ध हुआ। भास्वररूप अर्थात दीप्तिमान चमकदार रङ्ग अन्य रूपोंका प्रकाशक होता है: अतएव उसे रूपान्तर प्रकाश जनक रूप केवल तेजके रूपमे जाति सामान्यता सिद्ध होती है। शास्त्रीय भाषामे कहना हो तो यों कहना पडेगा कि तेजका भास्वरत्व धर्म ही तेजका साधर्म्यरूप है।

यहा एक बात और भी विचारणीय है। अग्निसे जिस समय लपटें निकलती हैं, उस समय उसका वर्ण ललाई लिये रहता है, लोहेका गोला आगमें तपाया जाय तो वह भी लाल हो जाता है, जलती हुई

लकड़ी या उसका जलता हुआ कोयला लाल रङ्गका रहता है। कवि लोग भी अग्निको लाल रङ्गका ही वर्णन करते हैं, अतएव इसका समाधान होना चाहिये। बात यह है कि अग्निका शुद्ध रङ्ग भास्वर श्वेत है और उसमें जो ललाई दिखती है वह पृथ्वीके कणोंके कारण है। पदार्थके पृथ्वी प्रधान अणु अग्नि संयोगमें लाल हो जाते हैं। इसी तरह आतशबाजीमें जो कई तरहके रङ्ग दिखते हैं वह उपाधिके कारण अर्थात बारूदमें रङ्गका सयोग करनेके कारण दिखते है, ये रङ्ग अग्निके नहीं किन्तु संयुक्त पार्थिवकणोंमेंके होते हैं।

अग्निका स्पर्श—यद्यपि अग्निमें स्पर्श गुण वायुसे आया है और वायुका स्पर्श अनुष्ण अशीत है, किन्तु अग्निका स्पर्श अनुष्ण अशीत नहीं बल्कि शुद्ध उष्ण है। वायु योगवाही है उसमें जैसे स्पर्शका संयोग हो वह वैसा ही हो जाता है। तेज स्पष्टः उष्ण है, अतएव उस स्पर्शमें तेजका सयोग होनेसे वह स्पर्श उष्ण हो गया। उष्णता अग्निकी एक विशेषता है। अग्निके अतिरिक्त और कोई पदार्थ उष्ण नहीं होता। जहा जहा उष्णताका अनुभव हो वहां समझ लीजिये कि अग्नितत्व मौजूद है। वायु अनुष्ण अशीत है, जल स्पष्ट शीतल पृथ्वी स्वभावतः न शीतल न उष्ण, अतएव उष्णता अग्निकी विशेषता स्पष्ट सिद्ध है। तपी हुई भूमि, खौलते हुए पानी, आग या सूर्यकी उष्णतासे गरम हुए पदार्थोंमें जो उष्णता होती है वह उन पदार्थों की प्रकृतिगत उष्णता नहीं बल्कि अग्नि सयोग (सूर्य भी अग्नि रूप है) से उत्पन्न उष्णता है। अतएव उष्ण स्पर्श समवायिकारणतावच्छेदक रूपमें तेजत्व जातिके लिये सिद्ध हुआ। अर्थात अग्निके घटक परमाणु भी उष्ण ही हैं। उष्ण स्पर्श और भास्वर शुक्ल रूपके साथ ही तेज पदार्थ सख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और द्रवत्व नामक सस्कार भी अग्निके गुण रूप हैं। इनमेंसे द्रवत्व गुण नैमित्तिक हैं। अग्निके संयोगसे तांबा, सीसा, लोहा, चांदी, सोना आदि धातु

गलकर द्रव रूप हो जाती है। एक निमित्तसे यह द्रवत्व उत्पादित होता है, अतएव इसे नैमित्तिक कहते हैं। अतः संस्कार रूपी धर्म द्रव्य समवायके कारण दिखाई पड़ते हैं। पृथ्वी और जलमें भी ये गुण हैं तेजका नैमित्तिक द्रवत्व उसका वैधर्म्य है। ऐसा नैमित्तिक द्रवत्व पृथ्वीमें भी देखा जाता है किन्तु वह भास्वर रूपमें नहीं होता, अतएव पृथ्वीका धर्म नहीं कहा जा सकता।

अग्नि मूर्ति—अग्नितत्वकी दो तरहकी अवस्था होती है। पहली अवस्था अग्निके परमाणुका विच्छिन्न होकर वायुमें मिलना यह अग्नि की अल्पावस्था है। अग्निकी उस अवस्थामें रूप नहीं होता वायुमें मिलनेसे वायुकी तरह अरूप हो जाता है। दूसरी उसकी स्वरूपावस्था है जब उसमें प्रकट तेजसका संचार होता है। आकाशमें वायुकी सीमा तक या यों कहिये कि नभमण्डल तक उसका विस्तार है। वायु अपने बलके प्रभावसे उसे आकाशमें सर्वत्र फैलाने और घुमाने लगा। वायुकी तरङ्गोंका परस्पर मन्थन और स्पर्श होनेसे अग्निके परमाणु एकत्रित होकर अग्निरूप उत्पन्न हुआ। यही अग्नि की दूसरी अवस्था है। अग्नि बुझने पर फिर वायुमें विलीन हो जाता है, यह उसकी प्रलयावस्था है. जहांसे उत्पन्न होता है वहीं लीन हो जाता है। महाप्रलयमें अग्नितत्व वायुमें लीन हो जाता है। अग्नितत्व की जिस अवस्थामें रूप उत्पन्न हुआ उसमें उसके अणुओंका परस्पर योग होनेसे आकाशमें अनन्त छोटे छोटे गोले बने। उनमेंसे बहुतसे एकत्रित होकर अग्निके बड़े बड़े पिण्ड बन गये। ये पिण्ड कोई छोटे कोई बड़े हैं। जितने बड़े अग्निके गोले बने वे उतने ही बड़े ब्रह्माण्ड और पिण्डोंके सूर्य हुए। छोटे पिण्ड छोटे ब्रह्माण्डोंके सूर्य हुए। ये सब अग्निपिण्डरूप सूर्य अपने अपने ब्रह्माण्डोंमें अपने तेजसे प्रकाश फैलाने लगे। हमारे ब्रह्माण्डका सूर्य हमारी पृथ्वीसे बहुत बड़ा और

बहुत दूर है। उसका प्रकाश जिस प्रकार हमारी पृथ्वी पर पहुँचता है उसी प्रकार पृथ्वी और सूर्यके आसपास घूमने वाले ग्रहों और नक्षत्रों पर भी पहुँचता है। सूर्य जिस प्रकार हमें प्रकाश देता है, उसी प्रकार हमारी पृथ्वीसे तेज और प्रकाशको खींचता भी है। इस प्रकारके पिण्ड बननेसे जो शेष अरूप अग्नि रहा उसका अधिकाश भाग जल और पृथ्वीमें सम्मिलित हुआ। जलमें मिला हुआ अग्नि जलकी द्रव्यावस्था बनाता है। जलसे भाफ पैदा करता और जलको भाफ रूपमे खीचकर मेघ बनानेका कारण होता है। उससे कम उष्णतासे जलकी द्रवावस्था कायम रहती हे और कम होनेसे जलका बर्फ बनता है। अग्नि तत्व से ही जलकी परिणति होती है, उसीके कारण उसमे रस उत्पन्न होता और भाफ बनती है। पृथ्वीमे अग्नि तत्व मिलनेसे पृथ्वीकी उर्वराशक्ति बढती है। यही नहीं सोना, चादी आदि धातु, पत्थर, पत्थरका कोयला आदि अग्नि सयोगसे ही बनते रहते हैं। अग्नि तेजसे ही आकाशमें मेघ सघर्षणसे बिजली प्रकट होती है।

अग्निके नित्य और अनित्य दोनों स्वरूप हैं। परमाणु रूपमे वह नित्य है और कार्य रूपमे अनित्य है। कार्यरूप अग्नि तीन प्रकारका है १ अयोनिज आग्नेय शरीर अग्नि जो आदित्य लोकमे है। दूसरा इन्द्रिय रूपी अग्नि चक्षुइन्द्रियमें कृष्णताराग्रवर्ती तेजस अग्नि है। जिसके कारण नेत्रोंमे देखनेकी शक्ति आती है और रूप ज्ञान होता है। तीसरा विषयाग्नि है। विषयाग्नि चार प्रकारका है (१) **भौमाग्नि** जो काष्ठ आदि लकडी, पत्थरका कोयला आदिमे है, जिनसे भोजन पकाया जाता और अन्य सासारिक तेजस काम होते हैं। (२) **दिव्याग्नि** अर्थात् वह अग्नि जो बिना ईधनके तेज पूर्ण है जैसे सूर्य, चन्द्र, विद्युत। (३) **औदर्याग्नि** जो जीवधारियोके उदरमें जठराग्नि रूपसे भोजनको पचाकर रस परिपाक करता है। शरीरमे पित्तकी उष्णता का कार्य सम्पादन करता है, वह भी इसी अग्निका रूप है।

(४) आकरज अग्नि जो खानियोंमे सोनाके रूपमें है। सोनाके सिवाय ताम्रा, हीरा, पन्ना, माणिक्य आदिको ले सकते हैं। भास्वर होनेके कारण ये धातुए और खनिज पृथ्वी तत्व वाली होते हुए भी अग्निकी प्रधानताके कारण तेजस मानी गयी हैं। पार्थिव पदार्थ आगमे जलाने से जल जाते हैं, किन्तु सोना, चादी, ताम्रा जलता नहीं पिघल जाता है। इन धातुओंमे तेज सयुक्त समवाय रूपसे रहता है। यदि कहा जाय कि सोना आग्नेय है तो उसका स्पर्श भी उष्ण होना चाहिये। इसका समाधान यह है कि ऐसी धातुओंमे जो पृथ्वीके परमाणु मिले रहते हैं उससे उनमे पार्थिव विषयक गुण भी रहते हैं। इसीसे उनमे गन्ध, रस और अशीतोष्ण स्पर्श रहता है। आवरणके कारण रूप निहित होनेसे इनमे प्रकाशकी कमी रहती है।

वैशेषिक सूत्रोपस्कारमे श्री शंकर मिश्रने प्रकाश तथा उष्णताकी चार श्रेणियां बनायी हैं (१) जिसमे प्रकाश और उष्णता दोनो हो जैसे सूर्यका तेज, दीपककी ज्वाला। (२) जिसमें प्रकाश प्रत्यक्ष रहता है किन्तु उष्णता नहीं। जैसे चन्द्र प्रकाश (३) जिसमे उष्णता रहती है किन्तु प्रकाश नही जैसे ग्रीष्मसे तपी हुई वस्तु, आग या धूपसे तपी हुई कडाही। (४) जिसमें प्रकाश और उष्णता दोनो अप्रकट रहती हैं। जैसे नेत्रोका तेज। चन्द्रमाकी चान्दनीमें परमाणु अधिक रहनेके कारण प्रकाश होने पर भी वह शीतल होती है। इसी तरह सोना उपाधि युक्त रहनेके कारण प्रकाशकी कमी रहती प्रकट उष्णता नही रहती।

आयुर्वैदिक भेद—ऊपर जीवधारियोके उदरमें रहने वाले औदर्याग्निका वर्णन हुआ है। यह औदर्याग्नि पहले दो प्रकारका होता है। प्रकृत और विकृत, प्रकृत अग्निको समाग्नि कहते हैं। शरीरको धारण करने और आहारको ठीकसे पचानेमे **समाग्नि** समर्थ है। जब इस अग्नि पर वात पित्त-कफ दोष अपना प्रभाव जमाते हैं तब उसमें

विकृति आ जाती है। अतएव उसके तीन भेद हो जाते हैं। विषमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि और मन्दाग्नि। जब अग्निमें वात दोषका प्रभाव होता है तब **विषमाग्नि** होता है। इसमें खाया हुआ आहार कभी तो सुलभतासे पच जाता है और कभी नहीं पचता, विषम स्थिति रहती है। जब उदरस्थ अग्नि पर पित्तका प्रभाव बढ़ जाता है तब उस अग्निको **तीक्ष्णाग्नि** कहते हैं इसके प्रभावसे किया हुआ आहार जल्दी पच तो जाता है; परन्तु उसका बना हुआ रस विदग्ध हो जाता है, जिससे उसमें अम्लता आ जाती है और उससे गलेमें जलन होती है, धुएं की सी डकारें आती हैं। पित्त दोष बढ़ कर यकृत विकार भी हो जाता है। जिससे बारम्बार भूखकी इच्छा होती है, शरीर पीला पड़ जाता है। जब उदराग्निमें कफका प्रभाव बढ़ जाता है तब उसे **मन्दाग्नि** कहते हैं। इसके प्रभावमें किया हुआ आहार विलम्बसे पचता है, अग्निकी पचानेकी शक्ति मन्द पड़ जाती है। पेटमें गुड़गुड़ाहट होती है। ऋतुके अनुसार भी अग्नि पर प्रभाव पड़ता है, जाड़ेके दिनोंमें अग्नि के पचानेकी शक्तिमें तीक्ष्णता रहती है, क्योंकि जाड़ेके दिनोंमें शरीर के रोम रन्ध्र सिकुड़ जाते हैं। जिससे शारीरिक उष्णता बाहर नहीं निकल पाती और भीतर घुमस कर अग्निको प्रबल कर देती है। बसन्त में समाग्निकी शक्ति बढ़ी रहती है। गर्मीमें उष्णताधिक्यसे उसमें विषमता आने लगती है और बरसात भर विषमाग्निका ही प्रभाव रहता है। शरद ऋतुमें तीक्ष्णाग्निका प्रभाव बढ़ जाता है।

पैत्तिक उत्ताप—शरीरमें गर्मी बनाये रखनेके लिये पित्त ही अग्निका प्रतिनिधित्व करता है। यों तो वात-पित्त-कफ और रक्त शरीर-रूपी भवनके चार खम्भे हैं। इन्हींके आधार पर शरीर ठहरा रहता है। अकेले न वात, न पित्त, न कफ ही शरीर धारण कर सकता है; किन्तु इनका शुद्ध स्थितिमें आवश्यक परिमाणमें रहना आवश्यक है।

तपसन्तापे धातुसे पित्त बनता है। अतएव शारीरिक उत्ताप बनाये रखना पित्तका काम है। जब पित्त क्षीण हो जाता है तब शारीरिक ऊष्मा घट जाती है और जब वह विकृत होकर बढ जाता है तब शारीरिक ऊष्मा भी अधिक होकर शरीरको हानि पहुंचाती है। शरीरमे वायु नाभिसे नीचे मलाशय और बस्ति स्थानमें विशेषतासे रहता है; और पित्त नाभिसे ऊपर और हृदयसे नीचे विशेष रूपसे निवास करता है। कफका स्थान हृदयसे ऊपर है। पित्तके विशेष स्थान यकृत, प्लीहा, हृदय, नेत्र, त्वचा और छोटी आंत हैं। कफके स्थान छाती, शिर, कण्ठ, सन्धिस्थल और आमाशय हैं। पित्तही अन्तराग्नि है। "**पित्त-मेवाग्निरिति। आग्नेयत्वात् पित्ते दहन पचनादिष्वभि प्रवर्त-मानेऽग्निवदुपचारः क्रियतेऽन्तराग्निरिति।**" पित्तके क्षीण होने पर अग्निगुण युक्त उष्ण पदार्थोंका सेवन कर उसे प्रबल किया जाता है। और बढे हुए पित्तमें अग्निके विरुद्ध शीतोपचारसे उसे शान्त कर साम्यावस्थामें लाया जाता है। जैसे चरकमें वायुको भगवान शब्दमें सम्बोधन किया गया है, उसी प्रकार सुश्रुतमें पित्तको भगवान कहा गया है "**जाठरो भगवानग्नि ईश्वरोऽन्नस्य पाचकः। सौक्ष्म्या-द्रसानाददानो विवेक्तुं नैवशक्यते।**" आचार्य वाग्भट भी कहते हैं **संधुक्षितः समानेन पचत्यामाशयस्थितम्। औदर्योऽग्निर्यथा वाह्यः स्थालिस्थं तोयतण्डुलम्॥**" पित्त शरीरमें आदानकार्य करताहै। पक्वाशय और आमाशयके मध्यमें स्थित हो ईश्वरीय प्रेरणासे अन्न-पानको पचाता है। आहार रस और मल-मूत्रको अलग अलग करता है। अन्य पित्त स्थानों और शरीरको अपनी शक्तिसे अनुगृहीत करता रहता है। रसको रक्त बनाता है।

पित्तके पांच भेद हैं। १ साधक २ रंजक ३ आलोचक ४ भ्राजक और ५ पाचक। साधक पित्तका कार्य मानसिक है, उससे मस्तिष्कके विविध कार्य सम्पादित होते हैं। हृदयके कार्यमें भी यह सहायक होता है।

रजकपित्त यकृत और प्लीहामे रहता है, यह रसको रक्त बनाता और उसका रंजन करता है। **पाचकपित्त** अन्नका पचन, रस निर्माण और मलमूत्रका विभाजन करता है। **आलोचकपित्त** दृष्टि नेत्र मण्डलमें रहकर रूप ग्रहणका काम करता है और दृष्टि पटलगत प्रक्रिया के साथ सम्बन्ध रखता है। **भ्राजकपित्त** का स्थान त्वचा है। यह मर्दन, सेचन, अवगाहन, लेपनादि क्रियाओंमे प्रयुक्त द्रव्योको पचाता है। त्वचाको भ्राजन करता है, त्वचाके कार्यको व्यवस्थित करता है। स्वेद उत्पन्न करना, तैल ग्रन्थियोंमे तैल उत्पन्न करके त्वचाको मृदु, अच्छत, चमकीली बनाता और उष्णताका नियमन करता है।

गुणदृष्टिसे अग्निकार्य—अग्नि तत्वके सतोगुणसे प्राणियो के नेत्रोंमें प्रकाश, रजोगुणसे शारीरिक जठराग्निको बल प्रदान और और तमोगुणसे क्रोध उत्पन्न होता है। नेत्र अग्नि तत्वके सतोगुणसे बनते हैं; और रूप अग्नितत्वसे उत्पन्न होता है। नेत्रोकी अरूपा शक्ति दिव्य योग द्वारा बुद्धिके दिव्य नेत्रोंसे प्राप्त होती है। वायु और प्रकाश तत्वके [illegible]जीव इन नेत्रोंसे नही दिखाई पडते। जलमें मिला हुआ अग्नि जलकी समानता रखता और अधिक जलको भाफमे परिणत करता है, पृथ्वीका अग्नि पृथ्वीकी शक्ति बढाता है, शरीराग्नि रुधिर बनाता और अन्न पचाता है। इसमे सतोगुण और रजोगुणकी प्रधानता और तमोगुणकी सहायतासे कार्य सम्पन्न होता है।

---

४ जल

१ अपत्वाभि सम्बन्धादाप:

२ रूप-रस-स्पर्श-द्रवत्व-स्नेह-सख्या-परिमाण-पृथक्त्व-सयोग-विभाग-परत्वापरत्व-गुरुत्व-सस्कारव-यश्च ।

३ एतं च पूर्ववत् सिद्धा

४ शुक्ल-मधुर-शीता एव रूप-रस-स्पर्शाः ।

५ स्नेहो ऽम्भस्येव ।

६ सासिद्धिक द्रवत्वञ्च ।

७ तास्तु पूर्ववत् द्विविधा नित्यानित्य भावान् ।

८ कार्यं पुनस्त्रिविध शरीरेन्द्रिय विषय सजकम् ।

९ अत्र शरीरमयोनिजमेव वरुणलोके पार्थिवावयवोपष्टम्भादुपभोग समर्थम् ।

१० इन्द्रियं सर्व्व प्राणिना रसोपलम्भकम्, अन्यावयवानभिभूतैर्जलावयवैरारब्धं रसनम् ।

११ विषयस्तु सरित् समुद्र हिमकरकादिरिति ।

उत्पत्ति—शब्द-स्पर्श और रूप तन्मात्राओंके साथ रसतन्मात्राने मिलकर जल महाभूतकी सृष्टि की। इसलिये जलमें रस गुणकी प्रधानता है, शब्दका असर है और स्पर्श तथा रूप गुण उसमें विद्यमान हैं। रसगुण द्रव्योंमें प्रधान है। द्रव्यका द्रव्यत्व अधिकांश रसके अधीन रहता है। रसका अनुगमन करके ही द्रव्योंमें कर्म प्रवृत्ति, विपाक, वीर्य और प्रभावकी प्रतिष्ठा होती है। ऐसा कोई भौतिक द्रव्य नहीं जिसमें रस न हो, विशेषकर चिकित्साका आधार द्रव्यमें रसके ही अधीन है। किसी द्रव्यको जीभमें लगाते ही जो स्वादकी अनुभूति होती है उसे रस कहते हैं। वही दिव्य और अमूर्त तथा अदृश्य रस जलमें अपना अधिष्ठान बना कर जब प्रतिष्ठित होता है तब जलका जलत्व प्रतिपादित होता है **"आप्योरसः"** रसतन्मात्र ही जलकी जान है। रस ईश्वरी अंश है श्रुति कहती है कि **"रसो-वै सः"** वह रस ईश्वर रूप है। प्रत्येक द्रव्यमें कोई न कोई रस रहता है और उस रसमें किसी न किसी दोषको शमन करने या समावस्थामें

लाने या विकृत करनेकी शक्ति होनी है। उसी शक्तिका अनुगमन कर वैद्य चिकित्सामें द्रव्यका प्रयोग करता है। गुरु लघु आदि गुण द्रव्यमें होते हैं किन्तु सहचारी भावसे यही गुण रसमें भी आरोपित होते हैं। आकाशमें सूर्यमण्डलके भी ऊपर नीहारिकाओं (नेब्युला) के भीतर जो सूक्ष्म ज्योतिर्मय तरल पदार्थ दिखता है, उसीसे नीहारिकाओंका आरम्भ होता है। यह ज्योतिर्मय पदार्थ आकाशके अनन्त देशमें बहुत दूर तक फैला रहता है। फिर ईश्वरी प्रेरणा रूपी प्रकृति विकार जन्य अज्ञात कारणसे इस अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थके भीतर आन्दोलन पैदा होता है। फिर बड़े जोरसे यह पदार्थ चक्कर खाने लगता है और घना होने लगता है। अनन्त देशमें फैले हुए इस भयानक चक्करसे अन्तमें कुण्डलीका आकार बनता है। यह विश्वकी बनावटकी आदि अवस्था है। वह नीहारिका स्थित तरल पदार्थ भारतीयोंका "नार" है, जहां नारायणका निवास स्थल है और यही "नार" ईसाइयोंकी सृष्टिका "नारा" है, जहां आरम्भमें ईश्वरी आत्मा बहता रहता है। जलकी उत्पत्तिका रहस्य इसीमें छिपा है। जलमें आकाश तत्व नीहारिका स्थित चक्करमें शब्द करता हुआ जो नार बना और वायु वेग से नारा स्थिति तक पहुंचा, उसमें नीहारिका स्थित प्रकाशका तेज पड़ा, अन्तमें "अप" तत्वमें उसकी परिणति हुई, वही आप होकर जलके रूपमें प्रकट हुआ। जलत्व जातिको त्रसरेणुसे आरम्भ कर अपर महत्वयुक्त जलमें प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है। एवं परमाणु और द्वियणुक रूप जलमें महत्वका अभाव होने से प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा जलत्वकी उपलब्धि हो नहीं सकती तो भी अनुमानसे उसकी उपलब्धि हो सकती है।

इस प्रकार जलकी परिणतिमें आकाश, वायु और अग्नितत्वों का सहयोग काम करता है। आकाशमें स्थित नीहारिका प्रस्रवित तरलतामें अग्निकी ऊष्मासे आप रूपी वाष्प उठा। मेघ बने और

उनके आपसी सघर्षसे जलकी सृष्टि हुई। जलके भी पिण्ड बने, सूर्य के प्रकाशसे जलके पिण्ड चमकने लगे। तारा और ग्रहोमें इसी प्रकारके जलसे तरी रहती है। भूमिका जल बराबर सूर्यकी उष्णता से भाफ बन कर उडता रहता है, मेघ बनते रहते है और उनसे जलकी सृष्टि होती रहती है। आकाशमें नक्षत्र है वे सब अग्निरूप नही, जल रूप भी हैं, विशेष कर नीहारिका समीपी नक्षत्र तो जलमय हैं। मेघोंसे गिरा हुआ जल पर्वतोमें सञ्चित होकर झरनोके रूपमे तथा नदियो के रूपमें बहता रहता है। भूमिके ऊपरी सतहमे जो जल सचित होता है उससे झील, सरोवर और तालाब भरते है। जो जल पृथ्वीके भीतर समा जाता है वह भीतर पृथ्वीमें सञ्चित होता है। वही कुओंके द्वारा फिर ऊपर आता है। भीतरका जल वायु और सूर्यके प्रभावसे बचा रहनेके कारण बराबर सञ्चित रहता है। भीतर भी जहा तक वायुका प्रभाव पहुँचता है वहा तक'का जल सूख जाता है। जैसे ऊपर नदियां बहती हैं उसी प्रकार भूमिके नीचे भी जलका प्रवाह झिरता रहता है। जलकी गति जल है। नीचे जल गिरता है, फिर भाफ बनता है, फिर मेघ बनते और फिर बरसते हे। यही क्रम जारी रहता है।

परिभाषा—जिसमे समवाय सम्बन्धसे रूप, रस और स्पर्श गुण हो, स्निग्धत्व और द्रवत्व हो उसे आप या जलकहते है। तर्क सग्रहमें "शीतस्पर्शवत्य आपः" कह कर जलकी परिभाषा की गयी है। उस मे जो कमी थी उसे व्याख्याकारने समवाय सम्बन्ध जोड कर पूरी करने की कोशिश की। फिर भी उसमे द्रवत्व और स्निग्धत्व बोधक पदकी कमी रह ही गयी। उसकी वैशेषिक दर्शनकी परिभाषासे पूर्ति हो जाती है। उसमे जलकी परिभाषा यो दी है।

रूपरस स्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः वै० २।१।२

प्रशस्तपादमे जलकी परिभाषा यों दी गयी है, अर्थात जिसमें

जलत्व जातिका सम्बन्ध समवाय हो उसे जल कहते हैं।

अपत्वाभि सम्बन्धादापः।

साथ ही उसमें रूप-रस-स्पर्श-द्रवत्व-स्नेह-संख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-परत्व-अपरत्व-गुरुत्व ये संस्कार हों। उसका रूप शुक्लश्वेत हो, रस मधुर हो और स्पर्श शीत हो। द्रवत्वका सांसिद्धिक सम्बन्ध हो।

रस—जलका मुख्य गुण रस है, जलका स्वाभाविक रस मधुर है, मधुर आदिरस है। दोष प्रभाव तथा द्रव्योंकी बनावटके भेदसे फिर रस छः प्रकारके हो जाते हैं। अर्थात १ मधुर २ अम्ल ३ लवण ४ तिक्त ५ कटु और ६ कषाय। इन सभी रसोंका भिन्न भिन्न प्रभाव होता है और द्रव्य अपने रसोंके द्वारा प्रभाव और गुण विकास करते हैं। द्रव्योंमें जो रसका आधान होता है वह जलके प्रभावसे ही होता है। तब प्रश्न होगा कि फिर सभी द्रव्योंका रस मधुर ही क्यों नहीं होता? इसका समाधान यह है कि द्रव्यकी बनावटमें जल महाभूतके अतिरिक्त जो अन्य भूतोंका भी समवाय कारण या असमवायिकारण से संयोग होता है, उसके कारण रसमें अन्तर पड़ जाता है। अर्थात् रसोंका रसान्तर भाव उपाधि योगसे होता है। जलमें भी खारापन आदि स्वाद होता है वह भी जलका असली स्वाद नहीं, जिस भूमि में जल संचित होता है उस भूमिके असरसे उसके रसमें अन्तर पड़ जाता है। विशेष कर खारी भूमिका जल खारा हो जाता है। भूमिगत धातुओंके प्रभावसे भी जलके गुणमें अन्तर आ जाता है। रस पृथ्वी और जल दो ही द्रव्योंमें रहता है। पृथ्वीमें जिस प्रकार मधुर रस रहता है उसी प्रकार कटु-तिक्तादि रसोंकी सत्ता भी रहती है। मधुर रस केवल जलमें ही रहता है। अतएव जलका मधुर रससे साधर्म्य है। असली जल वह है जो आकाशसे गिरा हुआ बिना भूमि स्पर्शके ऊपर ही ले लिया जाय। इसे दिव्य जल या गांग जल

कहते हैं। इसका स्वाद जलके असली रसका द्योतक है। जलके रसकी मधुरताका मिलान ऊखके रससे नहीं हो सकता। जलका मधुरत्व इतना सूक्ष्म होता है कि उसे अव्यक्त रस भी कहा जा सकता है। अर्थात जलमें जो मधुरता है वह कमसे कम मात्राकी इकाई मानी जा सकती है। इसके बाद द्रव्योंमें जो मधुरिमा होती है वह आपेक्षिक हैं, उसकी मात्रानुसार मिठासका परिमाण माना जायगा। जल में सिवाय मधुरता के और कोई रस नहीं रहता।

जलमें रूप—अग्निके रूप तत्वका जलमें समावेश होनेके कारण जलमे रूप है ही। जलमें रूप, रस, स्पर्श, द्रवत्व, स्नेह, संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व संस्कार रूपी कई गुण कहे गये हैं। प्रत्यक्ष पदार्थोंमे रूप, रस और स्पर्श होता ही है। अतएव जलमें वर्तमान है। जलका स्वाभाविक रूप श्वेत है, अग्निका रूप भास्वर श्वेत है और जलका विशेषण हीन श्वेत है। रूप, रस और स्पर्श प्रत्येक फल तथा पार्थिव द्रव्योंमें भी होते हैं। इसलिये इनका जलमें वैधर्म्य नहीं कहा जा सकता। हां विशिष्टताके साथ शुक्लरूप, मधुर रस, और शीतल स्पर्शको ही जलका वैधर्म्य कहा जा सकता है। प्रश्न उठता है कि स्फटिक मणिमें शुक्लरूप और चीनी में मधुररसवत्व है, फिर शुक्लरूपवत्व और मधुर रसवत्व जलका वैधर्म्य कैसे कह सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि केवल शुक्लमात्र रूपवत्व ही जलका वैधर्म्य है। जिससे दूसरे पदार्थोंमें जो शुक्लत्व भिन्न अन्य अन्य अधिकरणमें द्रव्य विभाजक धर्म है और भास्वर रूपके अधिकरण मे नहीं है जिससे इसका विभाग हो सके। स्फटिकमणिमें श्वेत वर्ण है अवश्य परन्तु वह पार्थिव द्रव्य होनेसे जो उसमें द्रव्य विभाजक धर्म है उससे पार्थिव द्रव्यके लिये ऐसा नियम नहीं कि और रङ्ग न हो। जैसे घट-नील-पीतादि हो सकते हैं, इसलिये स्फटिकका उदाहरण इसमे

व्याप्ति नहीं होता। पृथिवीत्वमें वह धर्म नहीं, जलत्व ही उक्त धर्म वाला है, क्योंकि जल जहां होगा वहां सफेद रंगके अतिरिक्त अन्य रंगका नहीं होगा। यमुना, चम्बल तथा केन जैसी कुछ नदियोंका जल देखने में नीलवर्ण प्रतीत होता है: किन्तु वह स्वाभाविक वर्ण नहीं आश्रयदोष से वैसा मालूम पड़ता है। इन नदियोंके जलको यदि आकाशकी ओर उछाला जाय तो नीलिमा नहीं उसका असली श्वेत रंग ही दिखेगा। किसी रंगके घोलनेसे जलमें जो वर्णान्तर होता है वह कुंकुम आदि पार्थिव द्रव्योंके संयोगसे होता है। यदि वैज्ञानिक पद्धति से जलका वह घोला हुआ रङ्ग निकाल लिया जाय तो श्वेत रंगका ही जल शेष रहेगा। तेजका रंग भास्वर शुक्ल है, अतएव यहां तेजका अति प्रसंग नहीं होता। जलके साथ स्नेहका भी लक्षण है; परन्तु स्नेह एक मात्र जलका ही धर्म है, पृथ्वी और तेजमें वह नहीं होता। इसलिये पृथ्वी और तेजका शुक्ल रूप ग्रहण करनेसे अति प्रसंगकी शंका नहीं होती।

जलमें स्पर्श—स्पर्श तीन प्रकारके होते हैं, उष्णस्पर्श, शीतस्पर्श और अनुष्णशीतस्पर्श। जलका स्वभाविक स्पर्श शीतल होता है। वायुका स्पर्श अनुष्ण अशीत है, अग्निका स्पर्श उष्ण और पृथ्वीका स्पर्श अनुष्ण शीत है। अतएव शीत स्पर्श केवल जलकी ही विशेषता है। अन्य किसीमें स्वभाविक शीत स्पर्श नहीं होता। इसलिये शीत मात्र स्पर्शवत्व जलका वैधर्म्य है। जब तक सूर्य किरणोंका उत्ताप या अग्निकी गर्मी जलमें नहीं पहुँचती तब तक उसके शीत स्पर्शत्वमें अन्तर नहीं आता। उष्ण जलमें जो उष्णता होती है वह जलकी नहीं तेज की है।

जलका द्रवत्व—जल, द्रव, पतला, प्रवहनशील होता है। यह उसका गुण है। पृथ्वी ठोस और कठिन होती है; किन्तु जल तरल होता

है। यदि कहा जाय कि ओले और बर्फ तो ठोस होते हैं यदि उन्हें जल माना जाय तो उनका द्रवत्व कैसे सिद्ध होगा ? इसका उत्तर यह है कि ओले और बर्फ पृथ्वी तत्व नहीं हैं, उनमे जो कठिनता आयी वह अदृष्ट शक्तिसे अवरुद्ध होनेके कारण आयी। थोडी भी गर्मी पानेसे वे फिर गल कर पानी हो जाते हैं। दूसरी शका यह हो सकती है कि घी, मोम, लाख आदि कुछ ऐसे पृथ्वी तत्व वाले पदार्थ हैं जो पिघलते हैं फिर यह कैसे कहा जाय कि द्रवत्व केवल जलमें ही है। इसका उत्तर यह है कि घी, मोम और लाख अपने आप नही पिघलते अग्नि का सयोग पाकर पिघलते हैं। अतएव उनका द्रवत्व स्वाभाविक नही है। यो तो सोना, चादी, तावा आदि पृथ्वीतत्व प्रधान धातु भी आग मे तपानेसे पिघलती हैं, किन्तु उनका द्रवत्व भी स्वाभाविक नही अग्नि सयोगसे होता है। जलका द्रवत्व स्वाभाविक है। बर्फ और ओले भी यद्यपि उष्णता पाकर पिघलते हैं, किन्तु बर्फ और ओलोका घनत्व स्वाभाविक नहीं है। औपाधिक शून्य तापसे नीचेकी अतिशीतसे वे जमते हैं। जब वह उपाधि दूर हो जाती है अर्थात साधारण प्राकृतिक उष्णतामे वे पहुँचते हैं तब पिघलते हैं। लाख वगैरहका घनत्व स्वाभाविक होता है। दूध और तेल ऐसे पदार्थ हैं जिनमे जलका अश अधिक और पार्थिव अंश थोडा रहता है। इसलिये ये द्रव रूप मे रहते हैं। उनका द्रवत्व पार्थिव अश सयुक्त जलसमवेत द्रवत्व धर्म है। इस प्रकार सासिद्धिक जलत्ववत्व जलका वैधर्म्य है। क्योकि केवल द्रवत्ववत्व तो पृथ्वी और तेजमे भी रहता है। इस प्रकार द्रवत्व दो प्रकारका है। सासिद्धिक और नैमित्तिक। जो द्रवत्व तेजके प्रभावके विना स्वभावसे ही द्रव रहता है उसे **सासिद्धिक** अथवा स्वाभाविक द्रवत्व कहते हैं। इसी प्रकार जो द्रवत्व तेजके ससर्गसे होता है उसे **नैमित्तिक** द्रवत्व कहते हैं। इसमेसे नैमित्तिक द्रवत्व तेज और पृथ्वी मे और सासिद्धिक या स्वाभाविक द्रवत्व जलमे वर्तमान है। इसलिये

जलका सांसिद्धिक द्रवत्ववत्त्व विशेष धर्म कहनेमे पृथ्वी तेजमे अति-व्याप्ति नही हुई। संख्या, परिमाण प्रभृति गुण जैसे जलमें है उसी तरह पृथ्वी आदि द्रव्यान्तरमे भी हैं। इसलिये स्नेहके सहित संख्यादि को ही जलका वैधर्म्य कहना होगा।

जलका स्नेहत्व—स्नेहत्व या चिकनाहट भी जलका विशेष लक्षण है। जहा स्निग्धता देखनेमे आवे वहा जलका अस्तित्व समझना चाहिये। मक्खन, घी, चर्बी आदिमे जो चिकनापन है वह भी जलके ही कारण है। हरेभरे वृक्षोंमे, कोमल फूलोमे जो चिकनाहट है वह भी जलके ही कारण है। पृथ्वी स्वभावतः रूक्ष होती है, इसलिये पृथ्वीतत्वके द्रव्योंमे जो स्निग्धता है वह जलके अंशके कारण है। जलका अंश नही रहने पर, सूखी लकडी, सूखी ईंट आदिमे चिकनापन नही होता। स्नेह गुण जल भिन्न अन्य द्रव्यमें नही रहता। इसलिये स्नेह के सहित संख्यादिको जलका वैधर्म्य कहनेमे कोई दोष नही होता।

नित्यानित्य—पृथ्वीके समान जल भी नित्य और अनित्य दो प्रकारका है। परमाणुरूप जल नित्य और द्व्यणुकसे लेकर अन्य सब कार्यरूप जल अनित्य हैं। अनित्य अर्थात कार्य रूप जल शरीर इन्द्रिय और विषय भेदसे तीन प्रकारका है। जलीय शरीर अयोनिज है। जब तक पार्थिव शरीर न हो तब तक योनिज शरीर नही हो सकता। यह अयोनिज शरीर वरुण लोकमे प्रसिद्ध है; क्योकि जलके अधिष्ठाता वरुण ही हैं। केवल जलके सहारे एक शरीरका निर्माण नही हो सकता। क्योकि ऐसे शरीरमे किसी वस्तुको धारण या आकर्षण करनेकी शक्ति नही होती। इसलिये पार्थिव भागके सयोग विशेषको भी जलीय शरीर (जलतत्व प्रधान द्रव्य) का कारण कहा जाता है। ऐसे जलीय शरीरमें जल सामवायिक कारण और

पृथ्वी आदि उसके निमित्त कारण रूपसे रहते हैं। दो विजातीय वस्तु एक कार्यके लिये समवायिकारण नहीं हो सकती। इसीलिये जलीय शरीरमें जलके समान पृथ्वीको समवायिकारण नहीं माना गया। ऐसा होता तो पृथ्वीत्व और जलत्वमें समानाधिकरणके कारण सांकर्य उपस्थित हो और इस कारण दोनोंके जातित्वमें बाधा पहुँचे। यदि एक को समवायि कारण और दूसरेको निमित्त कारण कहें तो कोई दोष नहीं होगा। उस प्रकारका अयोनिज शरीर प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध न हो सके तो भी अनुमानप्रमाण द्वारा सिद्ध हो सकता है। क्योंकि जो जाति द्रव्यके समवायिकारण रूप से नित्यवस्तुमें रहता है, वही जाति शरीरकी समवायिकारणवृत्ति होती है। अतएव जब जलत्व जाति उत्पन्न होने वाले जलके आरम्भक अथवा समवायिकारण जलीय परमाणुमें है तब उसमें शरीरकी समवायिकारण वृत्ति भी है ही। यदि जलीय शरीर न हो तो जलत्व शरीरके समवायिकारणमें वर्तमान कैसे होता। इस प्रकार जलीय शरीरकी सिद्धि होती है। दूसरा इन्द्रिय जल रसनेन्द्रियमें और तीसरा विषय जल नदी, तालाब, समुद्र आदिमें रहता है। जलके ये शरीर कार्य द्योतक हैं।

जलेन्द्रिय—इन्द्रियरूप जल जीवधारियोंके शरीरमें रसनेन्द्रियमें रहता है। इसी जलतत्वके कारण रसना द्रव्योंके रसका आस्वाद लेती है। यह रसना पित्तादि विजातीय पदार्थ द्वारा अनभिभूत 'जलावयवसे उत्पन्न है। यदि रसना पित्तोपहत हो और जलीय अंश उसके कारण क्षुब्ध हो तो जिह्वा रसास्वाद प्रत्यक्ष करनेमें समर्थ नहीं हो सकती।

शरीरमें जल कार्य—जीवधारियोंके शरीरमें जिस प्रकार गति और स्फूर्ति उत्पन्न करनेका कार्य वायुसे होता है और उष्णता उत्पादन तथा उत्साह और अन्न पाचनका कार्य अग्नि तथा उसके प्रतिनिधि पित्तके द्वारा सम्पादित होता है उसी प्रकार शरीरमें गर्मीकी समानता

बनाये रखने और वायुकी रूक्षता न बढ़ने देनेके लिये जलका काम श्लेष्मा करता है। श्लेष्मा। "श्लिष आलिंगने" धातुसे बना है, जिसका काम आप्यायित करना है। यह स्वभावसे स्निग्ध, गुरु, मन्द, श्लक्ष्ण, मृत्स्न (चिपकने वाला) और पिच्छिल गुण युक्त चमकदार और स्थिर व्याप्ति शील है। यह अपनी स्थिरता और स्निग्धत्व गुणके कारण सन्धि बन्धनोंको और क्षमा द्वारा मानसिक क्रियाओंको आप्यायित करता है। इसमें जलतत्वकी अधिकता और पृथ्वी तत्वकी सहयोगिता रहती है। श्लेष्मा परिवर्तन शील होनेके बदले सञ्चारशील है। स्नेहन द्वारा चिकनाहट लाना, शरीरको कोमल रखना, सहिष्णुता शक्ति, शरीर पुष्टि और साहस उत्पन्न करना इसका काम है। इसके द्वारा पोषक रसोंका निर्माण सुलभतासे होता है। जब वह शरीरमें बढ जाता है तब अग्निमान्द्य होता है; क्योंकि अग्नि जलसे बुझता है। ऐसी दशामें मुंहसे लार छूटती, शरीरमें भारीपन और आलस्य बढ़ जाता है। जब श्लेष्मारूप जलांश शरीरमें कम होता या क्षीण हो जाता है, तब भ्रम होता; चक्कर आते श्लेष्माके स्थान छाती, सिर, आमाशय और सन्धि स्थानोंमें शून्यता सी मालूम पडती, रूक्षता प्रतीत होती है। हृदयमें धडकन भी बढ़ जाती है। जैसे वायु और पित्तके ५ प्रकार हैं उसी प्रकार श्लेष्मा भी ५ प्रकार का है। १ अवलम्बक २ क्लेदक ३ बोधक ४ तर्पक और ५ श्लेषक।

अवलम्बक—अवलम्बक कफ छातीमें रहता है और अपने वीर्यसे त्रिक-कुलेकी हड्डियोंकी रक्षा करता है। अन्नवीर्य और अपनी शक्तिसे हृदयकी रक्षा करता है। यही नहीं अपने जलरूप द्रवत्वसे अन्य स्थानों की भी रक्षा करता है।

क्लेदक—क्लेदक कफ आमाशयमें रहकर अन्न समुदायको द्रवरूप देता है।

बोधक—बोधक कफ रसना स्थानमें रह कर रस ज्ञान उत्पन्न करता है। इसका स्थान गला है।

तर्पक—तर्पक कफ मस्तकमे रहकर शिरस्थान और नेत्रोंको तृप्त करता है। नेत्रोंके अतिरिक्त अन्य इन्द्रियोंको भी तृप्त करता है।

श्लेषक कफ—सन्धियोमें स्थित हो उनकी रक्षा करता है। चन्द्रमा जिस प्रकार सूर्यकी क्रियाका आधार है, उसी प्रकार श्लेष्मा भी चार प्रकारके आहारका आधार है। आमाशय स्थानमें श्लेष्मा जलीय गुण द्वारा सब प्रकारके भुक्त द्रव्यको गीलाकर अलग कर देता है, जिससे सहज ही पचन योग्य उसका मण्ड तैयार हो जाता है। हृदयस्थ श्लेष्मा कटि स्थानकी सन्धियोंको धारण करता है। कण्ठ स्थित श्लेष्माका जिह्वा-मूल आश्रय है। रसनेन्द्रियके सौम्यगुण प्रयुक्त रसका आस्वादन कार्य उसका कर्तव्य होता है। इस प्रकार शरीरमे कफ जलके कार्योंकी पूर्ति करता रहता है।

पुटकल बातें—जलमे मिला हुआ वायु जलमे गति उपन्न करता है। इससे जलमे बहनेकी गति आती है। इस गतिमे पृथ्वीका आकर्षण भी काम करता है, ढालू जगहमें उसकी गति तीव्र होती है, क्योंकि पृथ्वीका आकर्षण बेरोकटोक काम करता है। पृथ्वीकी अपेक्षा समुद्रका विस्तार तिगुना अधिक है। तालाबोमे और झीलोमे रुकावट रहनेके कारण जल रुका रहता है, उनमें पृथ्वीका आकर्षण भी अधिक पडता है; किन्तु अपनी गतिशीलताके कारण जरा भी बाध टूटा कि जल बहने लगता है। समुद्रका जल पृथ्वीके अधिक आकर्षण के कारण रुका रहता है। कुपित वायुके कारण समुद्रमे तूफान उठते हैं। वायुके कारण ही उसमे तरगे उठती हैं। चन्द्रमाका आकर्षण भी जल पर विशेषकर समुद्र पर पडता है। आमावास्याको चन्द्रम ान

रहनेके कारण आकर्षण नहीं होता अतएव पृथ्वीका आकर्षण अधिक रहता है और समुद्रका जल उस दिन सिमट जाता है ; किन्तु पूर्णिमा को पूर्ण शक्तिसे चन्द्रमाका आकर्षण होता है। इसलिये समुद्रका जल किनारेकी ओर बढ़ता है। समुद्रके इस बढ़ावको ज्वार और घटावको भाटा कहते हैं। वनस्पति, फल, शाक, अन्न आदिमें जो रस उत्पन्न होता है वह जलके कारण होता है। चरकमें भगवान आत्रेयने कहा है कि रस छः हैं और इन छहों रसोंकी योनि अर्थात उत्पत्ति स्थान उदक-जल है। छेदन और उपशमन इनके दो कर्म हैं। स्वादु, अस्वादु दो रुचि हैं। हित और अहित दो प्रभाव हैं। पंचमहाभूतोंके विचार से रस भेद होते हैं, पंचमहाभूत रसके आश्रयस्थान हैं, वे स्वयं रस नहीं हैं।

---

५ पृथ्वी

क्षितावेव गन्धः। रूपमनेक प्रकारकं शुक्लादि। रसःषड्विधो मधुरादिः। गन्धो द्विविधः, सुरभिरसुरभिश्च। स्पर्शोऽनुष्ण शीतत्वेसति पाकजः। सा च द्विविधा नित्या चानित्या च। परमाणु लक्षणा नित्या, कार्यं लक्षणात्वनित्या। सा च स्थैर्याद्यवयव सन्निवेश विशिष्टा-ऽपरजाति बहुत्वोपेता, शयनासनाद्यनेकोपकारकरी च।

उत्पत्ति—शब्द, स्पर्श, रूप, रस इन चारों तन्मात्राओंके साथ गन्ध तन्मात्राके मिलनेसे पृथ्वी उत्पन्न हुई। इसके शब्द-स्पर्श-रूप-रस गन्ध ये पाच गुण हैं। साख्य तत्वकौमुदीके अनुसार यह पृथ्वीकी उत्पत्तिका वर्णन है। आधुनिक वैज्ञानिकोंके मतसे पृथ्वी सूर्यका एक ग्रह है, जो सूर्यके आसपास दो गतिसे घूमती रहती है। एक गति तो उसकी कील पर ही होती है, जिससे दिन रात होते हैं और दूसरी

अपनी परिधिमें होती है जिससे मास, ऋतु और वर्ष होते हैं। यह गति ३६५ दिन और कुछ घण्टोमें पूरी होती है। अतएव ३६५ दिनका साल होता है। इसे सौर वर्ष कहते हैं। किन्तु यहा हमारा अभिप्राय पृथ्वी-मण्डलसे नही बल्कि पृथ्वी तत्वसे है, जिसे पचमहाभूतके अन्तर्गत पृथ्वी महाभूत कहते हैं। यहा पृथ्वी तत्व प्रधान द्रव्योसे मतलब है। पृथ्वी परमाणु समूहोसे बनी है। वे परमाणु एक ही जातिके नहीं हैं। पृथ्वी तत्वके निर्माणमे पाचों महाभूतोकी पच तन्मात्राओका सम्बन्ध है। अतएव पृथ्वीमें द्रव्यत्वकी पूर्ति हुई है। पार्थिव द्रव्योके अणु कई कारणोसे विस्खलित होते है तब उसके स्वरूपमें परिवर्तन होता है। कुछ पदार्थ जलमे घुलनशील होते हैं। जल सयोगसे उनके अणुओका विघट्टन होता है। कुछ द्रव्य ऐसे होते हैं, जिन पर जलका असर नहीं होता है, किन्तु अग्निके प्रभावसे वे या तो जल जाते हैं, जिससे वायु-तत्व भाफ बन कर निकल जाता है और अग्नितत्व भी अलग हो जाता है; शेष राखकी ढेरी बच रहती है। कुछ वस्तुए ऐसी हैं जो साधा-रणत: जल नही जाती परन्तु उनके अणु विस्खलित हो जाते और द्रव्यके अवयव टूटफूट कर अलग हो जाते हैं। इसके विरुद्ध कुछ ऐसे पार्थिव द्रव्य भी हैं जो अग्निके उत्तापसे द्रव-पतले हो जाते हैं। यह विस्खलन जल और तेज अंशके अलग होनेसे होता है।

परिभाषा—यद्यपि पृथ्वीमें महाभूतोकी पाचों तन्मात्राओंका सम्मेलन है तथापि उसका मुख्य गुण गन्ध है। इसलिये तर्क संग्रहमे पृथ्वीका लक्षण "तत्रगन्धवती पृथ्वी" कह कर दिया गया है। प्रशस्तपादभाष्यमे भी "क्षितावेवगन्धः" कह कर निश्चयात्मक विधि से कहा है कि गन्ध गुण केवल पृथ्वीका है और किसी महाभूतमे नहीं हैं। यह आशिक परिचय तो हुआ किन्तु परिभाषाकी पूर्ति इतने परिचयसे नहीं होती। वैशेषिक सूत्रमे कहा गया है।

रूप-रस-गन्ध-स्पर्शवती पृथ्वी।

अर्थात पृथ्वी वह महाभूत है जिसमें गन्ध, स्पर्श, रूप और रस गुण पाये जाते हैं। इस प्रकार पृथ्वीमें द्रव्यकी पूर्णता है। यद्यपि शब्द आकाश तत्वकी उपस्थितिसे पृथ्वीतत्वमें भी होता है तथापि वह केवल आकाशका गुण है इसलिये इसके गुण कथनमें उसका उल्लेख नहीं किया गया। तथापि साख्यतत्व कौमुदी कारने

शब्द स्पर्श रूप रस तन्मात्र सहिताद् गन्ध तन्मात्रात्
शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध गुणा पृथवी जायत॥

पृथ्वी तत्वकी उत्पत्ति और उसके गुणोंका उल्लेख एक साथ किया है। अब इसके गुणोके सम्बन्धमें प्रकाश डालेंगे।

गन्ध—गन्ध यह पृथ्वीका प्रधान गुण है और सिवाय पृथ्वीतत्व के यह और किसी तत्वमें नही होता है। अतएव गन्ध पृथ्वीका विशेष गुण है। साख्यसूत्रकारने "व्यवस्थितः गन्धः" कह कर यह व्यक्त किया है कि यह गन्ध गुण पृथ्वीमें व्यवस्थाके साथ है। अर्थात जहा किसी द्रव्यमें गन्ध हो वहां समझ ले कि इस द्रव्यकी रचना पृथ्वी प्रधान तत्वसे हुई है। पृथ्वीके अणुओंमें किसी न किसी प्रकारकी गन्ध होती अवश्य है; यह हो सकता है कि किसी किसी द्रव्यमें गन्धका प्रत्यक्ष अनुभव सहज रूपसे न हो। जिन द्रव्योकी घटनामें जलतत्वकी कमी रहती है उनमें गन्ध जल्दी व्यक्त नही होती। जैसे मिट्टीमें यो कोई गन्ध नही मालूम पडती; किन्तु यदि उसमे थोडा पानी डाल दिया जाय तो गन्ध स्पष्ट हो जाती है, या बरसातमे मिट्टी गीली होने पर उसे सूंघा जाय तो गन्ध मालूम पडेगी। अर्थात मिट्टी में गन्ध निहित रूपसे है। इसी तरह कुछ पदार्थोको यदि आगमें जलावे तो उसकी गन्ध प्रकट हो जाती है। जैसे कागज या कपडेमें गन्ध प्रकट नही, किन्तु उसे जलानेसे गन्ध प्रकट होती है। गुलाब, केवड़ा, खस आदिका अर्क उतारने पर जो गन्ध प्रकट होती है वह

उस अर्क जलकी नहीं वल्कि भाफके साथ उन पुष्पोकी सुगन्ध उडकर जाती है और अर्क उतारनेमे ठण्डक पाकर भाफ पानीके रूपमें बोतल मे पहुँचती है। यह सुगन्ध उस द्रव्यकी है जलकी नही। इसी तरह यदि किसी जगहके पानीमें कोई गन्ध आती हो तो समझना चाहिये यह गन्ध उस जलकी नहीं वल्कि उसमे कोई वस्तु मिलकर सडी है उसकी है।

अतएव गन्ध गुणके द्वारा पृथ्वी और पृथ्वीसे भिन्न पदार्थोंमें भेद निकाला जा सकता है। कभी कभी वायुके द्वारा भी फूलोकी गन्ध या किसी सडी वस्तुकी सी गन्ध मालूम पडती है। वह गन्ध वायु की नहीं सुगन्धित द्रव्योंके सुगन्ध कण या दुर्गन्धित द्रव्योंके अणु जो वायुमें मिल जाते हैं और वायु योगवाही होनेके कारण हम तक उनको लाता है उसका वही मूल कारण है। गन्ध दो प्रकारकी है सुरभि और असुरभि अर्थात सुगन्ध और दुर्गन्ध। कुछ लोग एक सख्या चित्रगन्ध नामसे वढाते हैं। यदि असुरभि शब्दका अर्थ सुरभिसे भिन्न किया जाय तो चित्रगन्ध असुरभिके अन्तर्गत आ जायगा अतएव सख्या वढानेकी आवश्यकता नहीं।

रूप—यद्यपि पृथ्वीमें रूप गुण भी है, पेडोंके हरे पत्ते, विविध वृक्षों के अनेक रगोंके फूल और फल, भिन्न भिन्न रंगोके पक्षी, रंगविरंगी मिट्टी यह सब पृथ्वीका रंग सूचित करते हैं; किन्तु यह रूप गुण केवल पृथ्वीमें नहीं जल और तेजमे भी रूप है। अतएव केवल रूपके वल पर यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक द्रव्य पृथ्वी प्रधान है। रगके साथ पृथ्वीके और गुणोंका मिलान हो तव उसका निश्चय होगा। रगसे पृथ्वी तत्वका निर्णय यों भी हो सकता है कि जलका रूप श्वेत है और तेजका रूप भास्वर श्वेत है। किन्तु पृथ्वीका रूप अनेक प्रकार का है। इससे श्वेत और भास्वर श्वेतके अतिरिक्त जहा अन्य रगकी

उपस्थिति हो वहा केवल के पृथ्वीतत्व कहा जा सकता है। आकाशके रंगके सम्बन्धमें और कुछ जलोंके रगके सम्बन्धमे जो शका उठ सकती है उसका समाधान हमने आकाश और जल प्रकरणमें कर दिया है। उनका रग औपाधिक होता है या पृथ्वीतत्वकी उपस्थिति या सम्पर्कके कारण होता है। एक बात और है, जल और तेजमें जो श्वेत और भास्वर श्वेत रूप है वह पाकज नहीं है अर्थात अग्निसयोग उसमें अन्तर नहीं आता; किन्तु पृथ्वीतत्वका रूप पाकज है अग्नि सयोग से उस रूपका परिवर्तन हो जाता है। कुछ लोग चित्र विचित्र रंग के द्रव्यके लिये चित्ररूप नामसे एक रूप कल्पना करना चाहते हैं किन्तु इसकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

रस—आकाश, वायु और तेजमे कोई रस नहीं है, जलमें केवल मधुर रस है; परन्तु पृथ्वीमें १ मधुर २ अम्ल ३ लवण ४ तिक्त ५ कटु और ६ कषाय छहों रस हैं। भिन्न भिन्न रसवाले पार्थिव कणो के संयोगसे नाना प्रकारके स्वाद वाले द्रव्य बन जाते हैं। इन रसोंके द्वारा द्रव्यकी पहचान हो सकती हैं। किसी पदार्थमें रसकी अनुभूति स्पष्ट होती है और किसीमें स्पष्ट नही होती। उसका कारण यह है कि जिनमें रसकी स्पष्ट अनुभूति होती है उनके रसको रस कहते हैं, किन्तु कुछ ऐसे द्रव्य हैं जिनके रसका अनुभव पीछे या देरसे होता है उन्हें अनुरस कहते हैं। नीबू, इमली, ऊखका रस स्पष्ट है; किन्तु आवला खाकर देखिये तो कुछ अम्लता लिये स्वाद आवेगा फिर थोड़ा मुंहमें पानी पीकर स्वादका अनुभव कीजिये मिठासका स्वाद अनुभवमे आवेगा, यह **अनुरस** है। कुछ ऐसे भी द्रव्य हैं जैसे, पत्थर, मिट्टी, सेलखरी आदि इनका स्वाद जीभमें रखनेसे स्पष्ट नही होता किन्तु यदि इन्हे पीस दिया जाय या जलाकर भस्म कर दिया जाय तो उनमे भी चखनेसे स्वादका अनुभव मिलेगा, ऐसे रसको **अणुरस** कहते है। मिट्टी पत्थर आदिमे स्वाद न होता तो लोग उन्हें खाही

न लेते कोई ऐसा स्वाद अवश्य है जो रुचिकर नहीं। इसीलिये लोग मिट्टी पत्थर मुंहमें जानेसे थूक देते हैं। साराश यह कि इनमें भी कुछ न कुछ रसास्वाद होता है। जलका मधुरत्व भी इतना सूक्ष्म है कि उसे वैद्यकमें अव्यक्त रस तक कहा जाता है। अतएव किसी पदार्थ में यदि स्पष्ट मधुरत्व हो तो पृथ्वी तत्वकी मधुरता समझनी चाहिये। शेष अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषाय रस तो सिवाय पृथ्वीके और किसी महाभूतमे होते नहीं अतएव इन रसोंके द्वारा पृथ्वीतत्वका निश्चय हो सकता है। इसके सिवाय जलका मधुर रस अपाकज है और पृथ्वी तत्वका पाकज है। अतएव पाकज मधुर रस ही पृथ्वीका मधुर है। कुछ लोग क्षारको भी एक रस मान रसोंकी संख्या ७ बताना चाहते हैं; किन्तु आयुर्वेदमतानुसार क्षार रस नहीं है। क्षरण किया जाने से क्षार बनता है। द्रव्योंको जलाकर उनकी राख पानीमे घोल साफ पानी छानकर आगमे रख पानी उड़ा देनेके बाद जो बचता है वही क्षार कहलाता है। अनेक पदार्थोंका उसमें मेल होता है। यही नहीं उसे मुंहमें रखने से कटु और लवण रसका सा स्वाद आता है इसके सिवाय क्षारमें स्पर्श और गन्ध भी होती है। स्पर्श और गन्ध द्रव्यके गुण हैं। अतएव क्षार द्रव्य है, रस नहीं। उसकी गणना रसोंमे नहीं हो सकती। कुछ आचार्य जलको अव्यक्त रस कहते हैं; किन्तु महर्षि आत्रेय अव्यक्त की गणना रसमें नही करते अतएव जलका मधुर रस ही सिद्ध है।

पृथ्वीका स्पर्श—पार्थिव द्रव्योंको छूनेसे कोमलता या कठोरता का अनुभव होता है। पृथ्वीका असली स्पर्श न उष्ण है न शीत। जहा उष्णता या शीतका अनुभव हो वहा समझ ले कि उस द्रव्यमें कुछ तेज या जल शीतत्वका असर आ गया है। प्रकृत अवस्थामें पृथ्वी का स्पर्श न शीत मालूम होगा न उष्ण अर्थात समभावका स्पर्शानुभव

होगा। जल सम्पर्कसे या रातके शीतसे यदि कोई पत्थर या भूमि ठण्डी मालूम पडे या अग्नि या धूपके संयोगसे गरम मालूम पडे तो उसे औपाधिक सर्दी या गर्मी समझना चाहिये। पृथ्वीका असली स्पर्श न ठण्डा होना चाहिये न गरम। यदि वायुमें अनुष्णशीत स्पर्श हो तो पृथ्वीके स्पर्शसे उसमें व्यभिचार दोष आ सकता है। इसे मिटानेके लिये समझना चाहिये कि वायुका स्पर्श अपाकज और पृथ्वीका पाकज है। वायुका उष्ण या शीत स्पर्श तेज या जलके कारण हो सकता है, वायुका असली स्पर्श अनुष्ण अशीत है।

नित्यानित्य आदि—संख्या और परिमाण आदि धर्म पृथ्वी से अतिरिक्त अन्यकी भी वृत्ति है; किन्तु पृथ्वीके सम्बन्धमें गन्ध विशिष्ट संख्या परिमाण आदि संस्कार कहे जायँ तो वह कथन साधक होगा। क्योंकि गन्ध केवल पृथ्वीमें ही होती है। गन्धके सहित संख्या आदि केवल पृथ्वीका धर्म कहा जायगा। पृथ्वी द्रव्यके नित्य और अनित्य दो भेद हैं। परमाणु लक्षण पृथ्वी नित्य है और कार्य लक्षण पृथ्वी अनित्य है। परमाणु रूपको आधुनिक विज्ञानमें **ऐटम** और कार्य रूपको **प्रोडक्ट** कहते हैं। घट-पट आदि भिन्न भिन्न पार्थिव द्रव्य बनाये और बिगाड़े जा सकते हैं। उनकी उत्पत्ति भी होती और विनाश भी होता है। इसीलिये वे सादि और सान्त अतएव अनित्य हैं। किन्तु जिन पार्थिव परमाणुओंसे उनकी रचना होती है वे अनादि और अनन्त हैं। न उनकी कभी उत्पत्ति होती और न विनाश। वे सदा शाश्वत रूपसे विद्यमान रहते हैं। हम मूर्ति निर्माण कर सकते हैं किन्तु मूलभूत परमाणुकी रचना नहीं कर सकते। परमाणुओंका केवल संयोग वियोग होता है सृष्टि या संहार नहीं, अतएव परमाणु रूपा पृथ्वी नित्य और कार्यरूप द्रव्य अनित्य हैं। दो परमाणु मिल कर द्व्यणुक बनता है। परमाणुके अतिरिक्त द्व्यणुक पृथ्वी अनित्य है।

जैसे दो परमाणु मिलकर द्व्यणुक होता है वैसे ही तीन द्व्यणुक मिलकर त्रसरेणु अथवा त्रुटि उत्पन्न होता है। इस प्रकार क्रमसे महापृथ्वी, महत्तर पृथ्वी और महत्तम पृथ्वी उत्पन्न होती है। इसका वर्णन सृष्टि सहार प्रकरणमे अलग होगा। परमाणु और द्व्यणुक रूप पृथ्वी प्रत्यक्ष नही होती, त्रसरेणुसे प्रत्यक्ष होने लगती है। त्रसरेणु चक्षुग्राह्य है; अतएव उसे सावयव द्रव्य द्वारा रचित अनुमान कर त्रसरेणुका कारण द्व्यणुक और द्व्यणुकका कारण परमाणु माननेसे वह भी सावयव वस्तु ठहरता है, अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि परमाणु सिद्ध नही है।

कार्यरूप पृथ्वी—कार्यरूप पृथ्वीके तीन भेद हैं १ शरीर पृथ्वी २ इन्द्रिय पृथ्वी और ३ विषय पृथ्वी।

पृथ्वी त्रिविधा, शरीरेन्द्रिय विषयभेदात्। शरीर अस्मदादीनाम्। इन्द्रियं गन्धग्राहकं घ्राणात्।

तच्च नासाग्रवर्ति। विषयोमृत्पाषाणादिः॥ तर्क।

अर्थात पृथ्वीमें समवाय सम्बन्धसे त्रिविध कार्य द्रव्य उत्पन्न होते है। उनकी सज्ञा शरीर, इन्द्रिय और विषय हैं, जो कि जाति चेष्टाके आश्रयसे समवाय सम्बन्धसे वर्तमान हैं। अथवा द्रव्यके समवायि देशमें नही रहते, उक्त जातिके आश्रयको शरीर कहते हैं। मनुष्यत्व गोत्व आदि इस प्रकारकी जाति हैं। मनुष्य और गो प्रभृति उक्त जाति के आश्रय हैं। इसलिये मनुष्य और गो प्रभृति शरीर लक्षण संगत हो सकते हैं। इस हिसाबसे शरीरके अवयव हस्तपादादि शरीर नही। इस प्रकार जो जाति द्रव्यके समवायि देशमे नही होती उसे जाति कहेगे। शरीरके अवयव हाथ पैरके द्वारा चेष्टा होने पर हस्तत्वादि जाति चेष्टावत् वृत्ति होने पर भी वह शरीरके समवायि कारण हस्तादि मे वर्तमान है। इसलिये द्रव्यके समवायि देशमें अवर्तमान जाति नही।

इसलिये हाथओंादिमें शरीर लक्षण की अति व्याप्ति नहीं हुई। अर्थात जिसके द्वारा आत्मा सुख दुःखका भोग करता है उसे शरीर कहते हैं। शरीर धारण करने पर ही आत्माको सुखदुःखका भोग हो सकता है। इसलिये शरीरको भोगका यन्त्र या साधन समझना चाहिये।

यदवच्छिन्नात्मनि भोगो जायते तद्भोगायतनमित्यर्थः

जिस शरीरमें चेष्टाका आश्रय हो उसे ही यथार्थमें शरीर कहेंगे। मुर्देमें चेष्टा नहीं होती, अतएव वह इस शरीरके उदाहरणमें नहीं आता। डाक्टर वसुने यद्यपि यह सिद्ध कर दिया है कि वृक्षागुल्मादि में भी ज्ञान है और चेष्टा भी है; किन्तु वह चेष्टा प्रत्यक्ष गमनागमनादि कार्य द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होती; अतएव उसे भी शरीरकी इस परिभाषामें नहीं लिया जायगा। शरीरको उपभोगके योग्य होना चाहिये। वृक्षादिकी गणना विषयके अन्तर्गत हो सकती है। यह बात अवश्य है कि जीवोंके समान वृक्षादि भी आहार लेते, हैं उसे पचाते हैं, सुख दुःखादिका अनुभव करते हैं, उनके भी शाखादि हस्तपाद हैं तथापि ऊपरके लक्षणमे उनका समावेश नहीं होता।

शरीर दो प्रकारका है, योनिज और अयोनिज। "शरीर द्विविध योनिजमयोनिजञ्च" गर्भ वासका दुःख भोग कर जो हमारा शरीर माता पिताके शुक्रशोणित जन्य होता है, ऐसे शरीरको योनिज कहते हैं

"शुक्रशोणित सन्निपातजन्यं योनिजम्।"

"अयोनिजन्त्व शुक्रशोणित सन्निपातादनपेक्षम्"

पशु और मानव शरीरको पाञ्चभौतिक कहा जाता है, उसका कारण यह है कि ऐसे शरीरमें पृथ्वीतत्व समवायि कारणरूपसे और अन्य चार महाभूत निमित्त कारण रूपसे रहते हैं। पाञ्चभौतिकका यह अर्थ नहीं कि पाचो महाभूत उसके उपादान कारण है। इसीतरह

पार्थिवका भी यह अर्थ नही कि पृथ्वी तत्व ही उनमे रहता है। बल्कि पृथ्वी तत्व समवायि कारण रूपसे और अन्य भूत उपादान कारण रूपसे रहनेका यहा भी तात्पर्य है। पार्थिव शरीरमे जो शीत स्पर्शकी उपलब्धि होती है उसका यह अर्थ है कि पार्थिव देहसे शीत स्पर्श युक्त जल सयोगरूप उपाधिके कारण होता है। वह पार्थिव शरीरका धर्म नहीं है। इसके दो भेद हैं, अण्डज और जरायुज। पक्षी, मछली, कछुवा, साप, विषखपरा, छिपकली आदि जो अण्डा फोड कर निकलते हैं उनका शरीर अण्डज कहलाता है। जो माताके गर्भमें रह कर समय पर जरायु या झिल्ली सहित जीव उत्पन्न होते हैं जैसे मनुष्य, पशु हिरन आदि ये जरायुज हैं। यह शुक्रशोणित सन्निपातज योनिज हैं। देवताओं मनु, नारदादि देव ऋषियोंका शरीर अनपेक्ष शुक्र शोणित जन्य धर्म विशेष सहित **स्वभावतः** अणुओसे उत्पन्न होता है उसे अदृष्ट विशेषजन्य अयोनिज कहेगे। "**अदृष्ट विशेषजन्यं मन्वादीनां देवर्षि नारदादीनाञ्च।**" अयोनिज शरीरकी उत्पत्तिके लिये शुक्रशोणित सम्बन्धकी अपेक्षा नहीं रहती। धर्म विशेष-सहकृत अणु ही उनके उपादान होते हैं। जो क्षुद्र जीव यातना भोगके लिये अधर्म विशेष सहित अणुओसे उत्पन्न होते हैं वे भी अयोनिज कहे जाते हैं यदि उन्हे क्षुद्र अयोनिज कहे तो ऊपरके अयोनिजसे इनकी पृथकता हो जावेगी। यह शरीर यातना शरीर है। उनके २ भेद हैं। १ स्वेदज और उद्भिज। जो क्षुद्र जीव शरीरकी उष्णता और पसीनेसे उत्पन्न होते हैं उन्हे **स्वेदज** कहते हैं। जैसे लीख, जुआँ, खटमल आदि। जो जीव पृथ्वी फोड कर निकलते हैं उन्हे उद्भिज कहते हैं जैसे तृण, लता, गुल्म, वृक्ष आदि इसीमे केचुए, इन्द्रगोप और मेंडकोंकाभी समावेश हो सकता है "**उद्भिश्च भूमि निर्गच्छन् त्युद्भिज्जः स्थावरश्च यः। उद्भिज्जाः स्थावरा ज्ञेयास्तृण गुल्मादि रूपिणः।**"

इस प्रकार उत्पत्ति भेदमें पार्थिव जीवोंका शरीर साधारणतः चार प्रकारका होता है १ उद्भिज २ स्वेदज ३ अण्डज और ४ जरायुज "देहश्चतुर्विधोजन्तो ज्ञेय उत्पत्तिभेदतः। उद्भिज्जः स्वेदजोऽण्डजस्तथश्चतुर्थश्च जरायुजः।

गर्भाधानमें शुक्र शोणित रूपी परमाणु विशेषोंका संयोग होकर शरीरकी उत्पत्ति होती है। वे परमाणु पार्थिव ही होते हैं। विशेष विशेष परमाणुओंके मिलनेसे एक गुण विशेषका परिपाक होता है। ये पाकज परमाणु परस्पर मिलकर शरीर रूपमें परिणत होने लगते हैं। अतएव शरीरोत्पत्ति यथार्थतः गर्भाधान क्रिया पर नहीं किन्तु परमाणुओंके सम्मिश्रण पर निर्भर करती है। देहरचनाके लिये गर्भाशय अनिवार्य नहीं है। मैथुन क्रियाके बिना भी शरीरोत्पादन हो सकता है। स्वेदज जीवोंकी उत्पत्तिमें उष्णता द्वारा शरीरस्थ परमाणु स्वेद द्वारा जो निकलते हैं उनका पाक होकर शरीर निर्माण होता है। इसी तरह जीव या पदार्थोंके सड़ने पर कोथन जन्य उष्णतासे कीड़ों की उत्पत्ति होती है। "अयोनिज पार्थिव शरीराणामुत्पत्ति धर्म विशे। सहितेभ्योऽणुभ्यएव स्वीक्रियते। नक कौमुदी।" अंगिरादि तथा नारद, सनकादि, एव मनुकी उत्पत्ति भी ब्रह्माकी इच्छासे उनके अहंकारभावसे हुई। सृष्टिके आदिमें ऐसा होना असम्भव नहीं "अहंकारेभ्यः समभवदङ्गिराः इत्यन्वर्थ संज्ञायां आगमेऽपि दर्शनात्। तत्वावली।" नरसिंह शरीरके सम्बन्धमें भी इसी प्रकारकी विशेषता है। नरसिंह देहमें नरत्व और सिंहत्व उभय जाति स्वीकार करना असम्भव मालूम पड़ता है, किन्तु इसे अखण्ड धर्म जाति अयोनिज स्वीकार करनेमें कोई बाधा नहीं। इसका अर्थ नर विशेष का सिंहवत पुरुषार्थ प्रकट करना भी लिया जा सकता है। वृक्षोंकी चेष्टा प्रत्यक्ष गमनागमन आदिमें नहीं होती अथवा वह चेष्टा चेष्टा

की परिभाषामे पूर्ण नहीं है, इसलिये उसे चेष्टावत वृत्ति जाति नही माना गया। चेष्टाके लिये प्रवृत्ति कारण है, ऐसी प्रवृत्ति वृक्षोंमे असम्भव है। इसलिये वृक्षोंकी अतिव्याप्ति मानव जैसे चेष्टावत वृत्ति वाली जातिमे नही हो सकती। प्रशस्त पादाचार्यने वृक्षोंकी गणना "विषयशरीर" मे की है।

२ इन्द्रियशरीर—इन्द्रिय उसे कहते है, जो स्मृतिशून्य ज्ञान-जनक मनोवृत्ति सयोगकी आश्रय हो। वाह्यइन्द्रियाँ स्वय ज्ञान जनन करनेमें असमर्थ हैं। वाह्यइन्द्रियोका काम अर्थ ग्रहण कर मन तक पहुँचा देनेका है। इसके बाद मन आत्माकी प्रेरणासे बुद्धिकी सहायता से उस अर्थका स्वरूप और संज्ञा निर्धारण करता है। यद्यपि आत्मा भी मनके साथ सयोग कर ज्ञान युक्त होता है; अतएव उसे भी यदि कोई मनके समान इन्द्रिय मानना चाहे तो उसका समाधान यह होगा कि इन्द्रियोके साथ "अजनक स्मृति" का विशेषण लगा हुआ है और आत्मा स्मृति जनक है; अतएव आत्मा इन्द्रिय नही है। जब आत्मा मनके और मन इन्द्रियोंके साथ इसी प्रकार इन्द्रिया विषयके साथ युक्त होती हैं तब ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। यह प्रत्यक्षका क्रम है। विषयोंके साथ मनका सीधा सयोग तादृश नही होता। मनके साथ आत्मा का सयोग होनेके कारण आत्मा भी आवृत्ति वाला नही रह पाता। कुछ लोगोकी यह राय है कि यथार्थ इन्द्रिय उसीको कहना चाहिये जो विषयका सन्निकर्ष द्वारा साक्षात्कार कर विषय ग्रहण करे। आख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा यही द्वार रूप होकर अर्थ ग्रहण कर प्रत्यक्ष करती हैं। परतु इसमे पूर्व कथनकी अतिव्याप्ति नही होती, क्योकि आत्मा द्वार रूप नही साक्षात्कारका समवायि कारण है; अतएव परिभाषामें कोई गडबडी नहीं हो सकती। अपने शरीर और इन्द्रियोंसे भिन्न जो कार्य द्रव्य हैं उन्हे विषय कहते हैं। इस प्रकार

शरीराश्रयंज्ञातुरपरोक्ष प्रतीति साधन द्रव्य मिन्द्रियम्
पदार्थ धर्म संग्रह।

शरीरमें अधिष्ठित उन यन्त्रोंका नाम इन्द्रिय है, जिनके द्वारा प्रत्यक्ष विषयका ज्ञान होता है। शुद्ध पृथ्वीके परमाणुओंसे जो इन्द्रिय बनी है वह घ्राणेन्द्रिय है; अतएव इसीके द्वारा पार्थिवतत्वके गुण विशेष गन्धका ज्ञान होता है। यह इन्द्रिय नासिकाके अग्रभागमें रहती है और पृथ्वीके विशिष्ट गुण गन्धका ग्रहण करती है। जलादि द्वारा अनभिभूत पार्थिव अवयव द्वारा इसका निर्माण होता है। हमारी समूची या दिखाई पड़ने वाली नाक घ्राणेन्द्रिय नहीं, यह उसका आधार मात्र है। यथार्थ इन्द्रिय तो अतीन्द्रिय है। जिसकी नासिका सदा जलादि द्वारा अभिभूत रहती है, उसकी घ्राणेन्द्रिय गन्ध ज्ञानमें असमर्थ होती है। जैसे जुखाम, प्रतिश्याय और पीनस रोगमें होता है। इसीलिये घ्राणेन्द्रियको जलादि द्वारा अनभिभूत पार्थिव अवयव द्वारा निर्मित्त कहा गया है। घ्राणेन्द्रियका पार्थिवत्व अनुमान प्रमाण द्वारा सिद्ध हो सकता है। गन्धमें प्रतिनियत इन्द्रियग्राह्य शब्दान्य गुणत्व है। अतएव वह स्वाश्रय जातीय करण द्वारा उत्पन्न अनुभवकी विषयी भूत है। गन्धको प्रत्यक्ष करनेमें घ्राणेन्द्रय ही करण है। अतएव यदि उसमें पृथिवीत्व न हो तो उसके लिये गन्ध ग्रहण साध्य नहीं हो सकता। जिस प्रकार भास्वररूप प्रतिनियत चक्षु इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य होता है, शब्द उसके लिये भिन्न गुण है। चक्षु निर्माण तेज द्रव्य द्वारा होता है। इसी प्रकार नासिकाको समझे। जो लोग नाकको ही गन्ध ग्राह्य इन्द्रिय समझते हैं, उन्हें समझना चाहिये कि नाक रहते हुए भी किसी किसीको गन्ध ग्रहण नहीं होता। अतएव नासिकाश्रित घ्राणेन्द्रिय एक अतिरिक्त शक्ति है। दृश्यमान नासिका घ्राणेन्द्रिय नहीं।

विषय शरीर—शरीर और इन्द्रियके अतिरिक्त ससारमे जितनी भी पार्थिव वस्तुए हैं उन सबको विषय कहते है। ये सब विषय जीव के उपभोगके लिये हे।

शरीरेन्द्रिय व्यतिरिक्तमात्मोपभोग साधनं द्रव्यं विषयः

उदाहरणार्थ मिट्टी, पत्थर खनिज द्रव्य, फलफूल, अन्नादि उपभोग विषय हैं। पार्थिव विषय द्व्यणुकादि क्रमसे उत्पन्न होते हैं। अर्थात पहले दो परमाणुओंके मेलसे द्व्यणुक, फिर तीन द्व्यणुक मिलकर त्रसरेणु। त्रसरेणु प्रत्यक्ष होता है। त्रसरेणुके बाद क्रमशः अवयव वृद्धिसे महत्तर और महत्तम वस्तु उत्पन्न होती है। पार्थिव विषय असख्य हैं। कुछ ऊपर उदाहरणार्थ नाम दिये हैं। अधिकाश स्थावर द्रव्यों द्वारा ही सम्पूर्ण पार्थिव विषयोका सग्रह होता है। इसमे से मृत्तिकाके विकार स्वरूप ईंट, चूना, सीमेंट, मिट्टी आदि है, शिलाजीत, हीरा, मोती, माणिक आदि भी हैं। वृक्ष, तृण, औषधि, लता, गुल्मादिको भी इसीमे शामिल कर लीजिये। यहा तक पञ्च महाभूतोंका विवरण पूर्ण हुआ।

साधर्म्य-वैधर्म्य

पदार्थोके प्रकरणमे पदार्थोका साधर्म्य और वैधर्म्य दिखलाया गया है। यहा द्रव्योंका साधर्म्य और वैधर्म्य दिखनेका प्रयत्न करते हैं। वैशेषिक सूत्रमे कहा गया है कि द्रव्य और गुणके सजातीय आरम्भकत्वको साधर्म्य कहते हैं।

द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम्।

१ अ० १ आ० ६ सू०।

जैसे पृथ्वी आदि ९ द्रव्योंका द्रव्यत्वयोग और द्रव्यत्व समवाय है, अन्य वस्तुओंका द्रव्यत्व समवाय नहीं होता। द्रव्यका निर्देश करते ही द्रव्यत्व उसका वैधर्म्य पाया जाता है। द्रव्यका आधार द्रव्यत्वमें है, वही उसका आरम्भक है, तब द्रव्यत्व समवाय उसका वैधर्म्य न होकर साधर्म्य ही कहा जायगा। व्याख्याकार जगदीशके अनुसार समवेत कार्यके जो कारणत्व हैं, जिन्हें समवायिकारणत्व कहेंगे वही नवों द्रव्यों के वैधर्म्य होंगे।

कालनिरूपण

१ कालः परापर व्यतिकरयौगपद्या यौगपद्य चिर क्षिप्र प्रत्यय लिङ्गम्।

२ तेषां विपर्ययेषु पूर्व प्रत्यय विलक्षणानामुत्पत्तावन्य निमित्ता भावात् यदन्य निमित्तं स काल,

३ सर्वकार्याणां च उत्पत्ति स्थिति विनाश हेतुस्तद् व्यपदेशात्।

४ क्षण, लव, निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त यामाहोरात्रार्धमास मास-ऋतु-अयन, संवत्सर, युगकल्प, मन्वन्तर, प्रलय, महाप्रलय, व्यवहार हेतुः।

५ तस्यगुणाः संख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभागाः।

६ काल लिङ्गाविशेषादेकत्व सिद्धम्।

७ तदनु विधानात् पृथक्त्वम।

८ कारणे काल इति वचनात् परम महतपरिमाणम्।

९ कारण परत्वादिति वचनात् संयोगः।

१० तद्विनाशकत्वा द्विभाग इति।

११ तस्याकाशवत् द्रव्यत्व नित्यत्वे सिद्धे।

१२ काललिंगा विशेषादञ्जसा एकत्वेऽपि सर्व कार्याणामारम्भ-क्रियाभि निर्वृत्ति स्थिति निरोधोपाधि भेदात् मणिवत् पाचकवद्वा नानात्वोपचार इति ।

कालमहिमा—पृथ्वी प्रभृत्ति द्रव्योके समान कालको भी एक द्रव्य माना गया है। यह कालिकपरत्व और अपरत्व अर्थात् ज्येष्ठत्व और कनिष्ठत्व द्वारा एव दो वस्तुओकी एककालता, भिन्नकालता, दीर्घका-लता और अल्पकालता द्वारा सिद्ध हो सकता है। जो वस्तु समयानुसार पहले उत्पन्न हुई है उससे परत्व और जो वस्तु कालानुसार पीछे उत्पन्न हुई है उससे अपरत्व गुण समझा जाता है। क्षण क्षणमें अनवरत सूर्य की गति हो रही है। जिसका जन्म और स्थिति कालके बीच अपर वस्तु है। समझना चाहिये कि उसकी आयुमे सूर्यका स्पन्दन या गति अधिक हुई है। उसकी अपेक्षा पर वालेके जन्म और स्थितिकालमें अपरकी अपेक्षा सूर्यकी गति कम हुई है। उससे अपेक्षित अपरत्व उत्पन्न होता है। ऊपर लिखी हुई सूर्यकी स्पन्दन क्रियासे परत्व और अपरत्वका सीधा सम्बन्ध नहीं है। हां उसे असमवायि कारण कहा जा सकता है। जो समय बीता है, बीत रहा है और आने वाला है वह काल ही है। अतएव काल भी एक द्रव्य है। पहले यह वस्तु उत्पन्न हुई, फिर अमुक हुई, इसे व्यवहारमें लाकर जाननेके लिये कालकी प्रगति होती है। अनाजके बोये जाने, फलने, बढने, फलोंके तैयार होनेमे कालका व्यवहार होता है। कोई वस्तु बरसातमें बोयी जाती है, शरदमे तैयार होती है, कोई शरदमें बोयी जाती और वसन्तमे तैयार होती है। यह भी काल गणना ही है। कालके लक्षण वैशेषिक सूत्रमे यों लिखे हैं।

अपरस्मिन्नपरं युगपत चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि।

भिन्न भिन्न कार्योंका आगे पीछे होना अथवा एक साथ होना,

देरसे या शीघ्रतासे होना ये सब कालके सूचक चिन्ह हैं। काल पौर्वापर्य आदि गुणोंका आधार होनेके कारण द्रव्य है। आकाशकी तरह निरवयव होनेके कारण नित्य है। यह तो लक्षण हुआ। तर्क संग्रहमें परिभाषा यों दी हुई है।

अतीतादिव्यवहार हेतुः कालः

परिभाषा—अर्थात काल उसे कहते हैं जिसके द्वारा भूत, वर्तमान और भविष्यके समयका व्यवहार समझा जाय।

उत्पन्न हुई वस्तुओंके परत्व, अपरत्व, यौगपद्य, अयौगपद्य, चिरस्थायित्व, अचिरस्थायित्वकी प्रतीति कालके ही द्वारा हो सकती है। क्योंकि सूर्यकी क्रियाकी अधिकता अथवा न्यूनताके द्वारा ही परत्व और अपरत्वका चुनाव हो सकता है। इस द्रव्यमें घट-पटका उदाहरण काम न देगा। सूर्यकी गतिके साथ सम्बन्ध लगाना ही कालके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्त करना है। सूर्यकी गतिसे सम्बन्ध कालके द्वारा ही जोड़ा जा सकता है। तभी घटक रूपसे कालका अनुमान हो सकेगा। काल ही सम्पूर्ण कार्योंकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशका कारण है। इसलिये उत्पन्न होने वाली सभी वस्तुओंका निमित्त कारणत्व कालका साधर्म्य है। यह काल पदार्थ ही क्षण, मुहूर्तादिके व्यवहार का हेतु है। यद्यपि काल एक है। किन्तु वह अनित्य पदार्थोंकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशका आधार होनेके कारण तीन केन्द्रोंमें विभक्त है। अर्थात भूत, वर्तमान और भविष्य।

कालस्तु उत्पत्ति स्थिति विनाश लक्षण स्त्रिविधः

कालगणना—यह त्रिविध विभाग उसकी अनेकता नहीं सिद्ध करता। जैसे एक ही मनुष्यमें बाल्यावस्था, युवावस्था और प्रौढ़ावस्था होती है, उसी तरह एक ही कालकी यह तीन अवस्था हैं। काल तो सदा सर्वदा नित्य और शाश्वत रूपसे विद्यमान रहता है। कार्य व्यवहारकी सुविधा

के लिये यह भेद किये गये है। जिस कालका इस समय भाव है; किन्तु पहले नहीं, वह वर्तमान है, अर्थात जो समय चल रहा है वह वर्तमान है। जिसका किसी समय भाव था, किन्तु इस समय अभाव है वह भूतकाल है, अर्थात जो समय बीत चुका उसे भूतकाल कहते हैं। जिस कार्यका इस समय अभाव है, किन्तु भाव होने की सम्भावना है। वह भविष्यत है। अर्थात जिस कार्यका समय आने वाला है उसे भविष्य काल कहते हैं। व्यवहारमें समयके ही अर्थमे भूत-वर्तमान-भविष्य कहा जाता है; किन्तु उसे कार्यका विशेषण समझना चाहिये। यह तो कार्यकी दृष्टिसे विभाग हुआ। अब समयकी दृष्टिसे भी उसका विचार होना चाहिये।

सूर्यकी गतिके अनुसार जिस प्रकार समय व्यतीत होता है उसी के मानसे काल गणना की जाती है। जैसे ६० विपलका एक पल, ६० पलकी एक घड़ी, ४ घड़ीका एक प्रहर, ८ प्रहर या ६० घडीका एक दिन रात, सात रात दिनका एक सप्ताह, दो सप्ताहका एक पक्ष, दो पक्षका एक मास, २ मासकी एक ऋतु और ६ ऋतुओंका एक वर्ष होता है। आजकलके अंग्रेजी हिसाबमे ६० सेकण्डका एक मिनट, ६० मिनटका एक घण्टा (अर्थात ढाई घडी), २४ घण्टेका एक दिन रात। आगे पूर्ववत। यो युग और महाप्रलय तककी काल गणना प्रसिद्ध है। ये समय विभाग प्रत्यक्षके आधार पर व्यवहारकी सुविधा के लिये किया जाता है। समयका ज्ञान करनेके लिये पहले एक बालुका घटी काचकी बनायी जाती थी, उसमे इतनी बालू रखी जाती थी और डमरूके आकारके काच यन्त्रमे बालू रहती थी। और घड़ीका छिद्र इतना सूक्ष्म रहता था कि ठीक एक घण्टेमे ऊपरकी बालू नीचे चली जाती थी। एक धूप घड़ी भी बनायी जाती थी जो सूर्यकी छायाके अनुसार चलती और ठीक समय देती थी। अब तो सुई वाली घडियाँ दीवाल पर लगाने की, मेज पर रखने की, जेबमे लगानेकी औ

कलाईमें बाँधनेकी अनेक प्रकार की आती है जो सेकण्ड, मिनट और घण्टेकी चालसे १२ घण्टेमें दिन और १२ घण्टेमें रातकी सूचना देती है।

कालके गुण—काल द्रव्यमें संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग और विभाग कई गुण होते हैं। संख्यामें काल एक है। अनादिकाल से काल चला आ रहा है और जब तक सृष्टि है, इसी प्रकार चलता जायगा। सृष्टिके प्रलय होने पर भी कालका अस्तित्व नही मिटेगा, व्यवहार मिट जायगा। कालका द्रव्य विभाजक धर्म रूप सजातीय कोई द्रव्य नहीं है, अतएव साधर्म्यका प्रश्न ही नहीं उठता। पृथकत्व धर्म एकत्वका व्यापक होता है अतएव जब काल एक है तब उसका पृथकत्व सिद्ध है ही। काल पदार्थमें परम महत् परिमाण है। क्योंकि सम्पूर्ण ज्येष्ठ और कनिष्ठ वृत्ति परत्वापरत्वके कारण रूप सूर्यकी क्रियाके साथ सम्बन्ध घटक वस्तुका परम महत् होना स्वाभाविक है। सूर्य क्रियाके साथ काल द्वारा परम्परा सम्बन्ध रखनेके लिये वस्तु के साथ कालका संयोग रखना पडता है, इसलिये सयोग गुण कालमें है ही परत्व और अपरत्व युक्त पुरुषका क्रिया द्वारा उस संयोगका नाशक विभाग हो सकता है, इसलिये स्वीकार करना होगा कि कालमें विभाग गुण भी है।

नित्यानित्य—घट-पट आदि जितने अनित्य द्रव्य हैं, उनका निमित्त कारण काल ही है। काल पिण्ड योगके द्वारा ही संसारके सभी कार्य चलते हैं। **"जन्यानां जनकः काल जगता माश्रयो मतः भा० पा०"** परन्तु नित्य पदार्था पर कालका प्रभाव नहीं पडता। अर्थात दिक्, आकाश आदिमे भूत, भविष्य, वर्तमानके भेद लग नही सकते। क्योंकि उनका कभी अभाव नही होता।

अतएव उनके साथ त्रिकाल भेद नहीं लग सकता। वे शाश्वत होने के कारण कालकी परिधिसे परे हैं। नित्य पदार्थोंके साथ जो कालका सम्बन्ध जोड़ा जाता है वह औपाधिक है। अर्थात नित्य पदार्थोंके साथ कालका सम्बन्ध नहीं रहता, अनित्य पदार्थोंके साथ रहता है। क्योंकि अनित्य पदार्थ उत्पत्तिमान कार्य हैं। कार्य बिना कालके सम्पादित नहीं हो सकता। वैशेषिक सूत्र कहता है "नित्ये ष्वभावादनित्येषु भावात् कारणे कालाख्येति।" आकाश जिस प्रकार गुणका आश्रय होनेके कारण द्रव्य है और समान जातीय और असमान जातीय कोई कारण न होनेसे नित्य कह कर सिद्ध हुआ है, उसी प्रकार काल भी गुणका आश्रय होनेसे द्रव्य है और समान तथा असमान जातीय कारणके अभावमें नित्य सिद्ध होता है।

द्रव्यत्व नित्यत्वे वायुना व्याख्याते वै० २ अ० १ आ० ७ सू०

दिक्निरूपण

१ दिक् पूर्वापरादि प्रत्यय लिङ्गा।

२ मूर्तं द्रव्य मवधि कृत्वा मूर्तेष्वेव द्रव्येष्वेतस्मादिदं पूर्वेण, दक्षिणेन, पश्चिमे, नोत्तरेण, पूर्वदक्षिणेन, दक्षिणापरेण, अपरोत्तरेण, उत्तर पूर्वेण चाधस्तादुपरिष्टाच्चेति दश प्रत्यया यत्तो भवन्ति सा दिगिति। अन्य निमित्तासम्भवात्।

३ तस्यास्तु गुणाः सख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग विभागाः।

४ कालवदेते सिद्धाः

५ दिक् लिगा विशेषादञ्जसा एकत्वेऽपि दिशः परम महर्षिभिः श्रुतिस्मृति लोक व्यवहारार्थ मेरु प्रदक्षिण मावर्तमानस्य भगवतः

सवितुर्मेरु संयोग विशेषास्तेषां लोकपाल परिगृहीत दिग् देशा नामन्वर्थाः प्राच्यादि भेदेन दश विधाः संज्ञाः कृताः, ततोऽभक्त्या दशदिशः सिद्धाः

६ तासामेव देवता परिग्रहात पुनर्दश संज्ञा भवन्ति माहेन्द्री, वैश्वानरी याम्या नैऋती वायव्या कौवेरी ऐशानी ब्राह्मी नागी चेति।

लक्षण—आकाश और कालके समान दिक् भी एक द्रव्य है। उसमें जो दिक्त्व धर्म है वह जाति नहीं है, उपाधि मात्र है। काल जिस प्रकार कालिक विशेषणता सम्बन्धमें सब उत्पन्न होने वाली वस्तुओंकी उत्पत्तिका कारण है, उसी प्रकार दिक् दैशिक (देश दिशा सूचक) विशेषणता सम्बन्धसे सब उत्पन्न होने वाली वस्तुओंकी उत्पत्तिका कारण है। इस कार्य-कारण भावके द्वारा ही दिक् पदार्थ का लक्षण और निर्वचन किया जा सकता है। तर्क संग्रहमें कहा गया है कि जिसके द्वारा पूर्व पश्चिम आदि व्यवहारका विचार किया जाता है उसे दिशा कहते हैं। अर्थात दिक् पूर्व-पश्चिम आदिके ज्ञानका हेतु है।

प्राच्यादि व्यवहार हेतु दिक्

प्रशस्तपाद भी कहते हैं कि पूर्व पश्चिम आदिका प्रत्यक्ष ज्ञानकराने वाला लक्षण दिक् है। अतएव देश सम्बन्धी परत्व और अपरत्वके द्वारा भी दिक् पदार्थकी सिद्धि हो सकती है। अर्थात एक वस्तुसे दूसरी वस्तु किस ओर है और कितनी दूरी पर है, यह ज्ञान जिसके द्वारा सम्भव हो सकता है उसका नाम दिक् है।

इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम्॥ वै० सू० २।२।१०

कालके द्वारा जो वस्तुओंका पूर्वापर सम्बन्ध ज्ञान होता है, वह सापेक्ष रहता है। जैसे द्वापरमें श्रीकृष्ण हुए, अशोक विक्रम संवतके इतने वर्ष पहले हुआ। इसमें एक घटना दूसरेकी अपेक्षा रखकर होती है। समयका अन्दाज़ा कलियुगमें कितने वर्ष पहले द्वापर

हुआ, अथवा विक्रम संवतसे कितने वर्ष पहले अशोक था, इसमें कलियुग और विक्रम संवतकी अपेक्षा है, श्रीकृष्ण और अशोकका समय जाननेमें। दिक्‌का भी यही हाल है। हिमालय हिन्दुस्तानके उत्तरमें है, यहा हिन्दुस्तानकी अपेक्षा है, हिमालयकी दिशा जाननेमें। इसे यो भी कह सकते हैं कि हिमालय हिन्दुस्तानके उत्तरमें है अथवा हिन्दुस्तान हिमालयके दक्षिणमें है! इस प्रकार जैसे कालसे पूर्वापर कार्यके समयका ज्ञान होता है उसी प्रकार दिक्‌से किसी स्थानसे दूसरे स्थानकी दिशाका ज्ञान होता है। कालसे आनुपूर्विक प्रवाहका और दिक्‌से सहवर्तित्वका ज्ञान होता है। "तत्वं भावेन" वैशेषिक सूत्रके अनुसार दिकका भेद दर्शक कोई लक्षण नहीं है। दिक्‌ भी आकाश और कालके समान एक है, किन्तु कार्य विशेषसे उत्पन्न मूर्तरूप उपाधि सूचक दिशाओंके नाम निश्चित किये जाते हैं। "कार्यविशेषेण नानात्वम्" किसी वस्तुसे दूसरी वस्तु किस ओर और कितनी दूर पर है इसके अनुसार दिकका परत्व-अपरत्व जाना जायगा। दूरवर्ती वस्तु से परत्व और समीपवर्तीसे अपरत्वका ज्ञान होगा। अर्थात इसमें विशेष कारणकी अपेक्षा होगी। यदि विशेष कारणके बिना उसकी उत्पत्ति हो तो अविशेष रूपसे सभी वस्तुमें तुल्यभावसे परत्व और अपरत्व सम्भव हो। कालके समान दिक्‌ भी निराकार, निरवयव और विभुत्व नित्य है। दिक्‌ एक है उसमे उत्तर पश्चिम आदिके विभाग काल्पनिक एव कार्य सौकर्य के लिये उपाधि रूप हैं। कालके समान दिक्‌मे भी संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग और विभाग पाच गुण हैं। दिकके विभाग मूर्ति पर अवलम्बित हैं और कालके विभाग क्रिया पर अवलम्बित हैं। जैसे सूर्यके दर्शनसे पूर्वका ज्ञान होता है। तथा कालमें इन पदार्थोंकी गति आदिका निरूपण क्रिया के कालसे होता है। दैशिक सम्बन्ध बदला जा सकता है; किन्तु कालिक सम्बन्ध अपरिवर्तनीय होता है। कालमें भूत भूत ही रहेगा, वर्तमान

वर्तमान ही रहेगा : किन्तु दिकमें मूर्तिकी अपेक्षा रहती है। जैसे प्रयागसे काशी चलना है तो पश्चिमसे पूर्व जाना पड़ेगा, किन्तु यदि काशीसे प्रयाग चले तो पूर्वसे पश्चिम चलना होगा। कुछ आचार्यांने दिक् और कालको अतिरिक्त पदार्थ न मानकर ईश्वर स्वरूप कल्पना किया है। किन्तु भौतिक विज्ञानमें ऐसी भावनाके लिये स्थान नहीं है। अतएव उसे अतिरिक्त द्रव्य स्वीकार करना ही उचित है।

दिग्भेद्—कार्य सौकर्यके लिये दिकके मुख्य ४ भेद हैं, किन्तु विशेषताकी दृष्टिसे १० भेद हैं। सबसे पहले जिधर सूर्यका दर्शन सवेरे होता है उसे पूर्व या पहले की दिशा कहते हैं "**प्रथम अञ्चतीति प्राची**" पूर्वके जो पीछे हो या पीछे जाकर जिधर सूर्य अस्त होता है उसे पश्चिम या प्रतीची कहते हैं "**प्रत्यक अञ्चतीति प्रतीची**। यदि सवेरे सूर्योदयके समय सूर्यकी ओर मुंह करके खडे हो तो हमारे दाहने हाथकी ओर जो दिशा पडेगी उसे दक्षिण या अवाची कहते हैं। दो पहरके समय सूर्य दक्षिणकी ओर आ जाते हैं। "**अर्वाक् अञ्चतीति अवाची**" सवेरे सूर्यकी ओर मुंह करके खडे होने पर हमारे बाये हाथ जो दिशा पड़ती है उसे उत्तर या उदीची कहते हैं "**उदक अञ्चतीति उदीची**" उदक अर्थात इधर सूर्य आते हुए दिखाई नहीं पडते। पूर्व दिशाके अधिष्ठाता देव महेन्द्र माने जाते हैं। अतएव पूर्व दिशाको **माहेन्द्री** भी कहते हैं। दक्षिण दिशाके अधिष्ठाता देव यम-राज माने जाते हैं अतएव दक्षिणका दूसरा नाम **यामी** भी कहते हैं। पश्चिम दिशाके अधिष्ठातृ देव वरुण हैं, अतएव पश्चिम को **वारुणी** भी कहते हैं। उत्तरके अधिष्ठातृ देव कुबेर माने जाते हैं अतएव इसका दूसरा नाम **कौवेरी** दिशा भी है।

विदिशा—दो दिशाओंके बीचके कोनेको विदिशा कहते है। यह दिशाओंके अन्तरालमें अभिसन्नि स्थल है। पूर्व और दक्षिणके बीच के कोणको आग्नेय कोण कहते हैं। इसके अधिष्ठातृ देव अग्नि हैं। इसे वैश्वानरी भी कहते हैं। दक्षिण और पश्चिमके कोनेको **नैऋत्य** कहते हैं। इसके अधिष्ठाता नैऋत हैं। पश्चिम और उत्तरके कोने को **वायव्य** कोण कहते हैं, इसके देवता वायु हैं। उत्तर और पूर्वके कोनेको **ईशान** कहते हैं। इसके अधिष्ठातृ देव ईश्वर महादेव जी हैं। हमारे शिरके ऊपर आकाशकी ओरकी दिशाको ऊर्ध्व कहते हैं, इसके अधिष्ठातृदेव ब्रह्मा हैं, अतएव इसे ब्राह्मी भी कहते हैं। हमारे पैरोंके नीचे जो दिशा है उसे अधः या नीचे कहते हैं। इसके देवता नाग हैं, अतएव इसका दूसरा नाम नागी भी है।

मन

१ मनस्त्वाभिसम्बन्धान्मनः ।
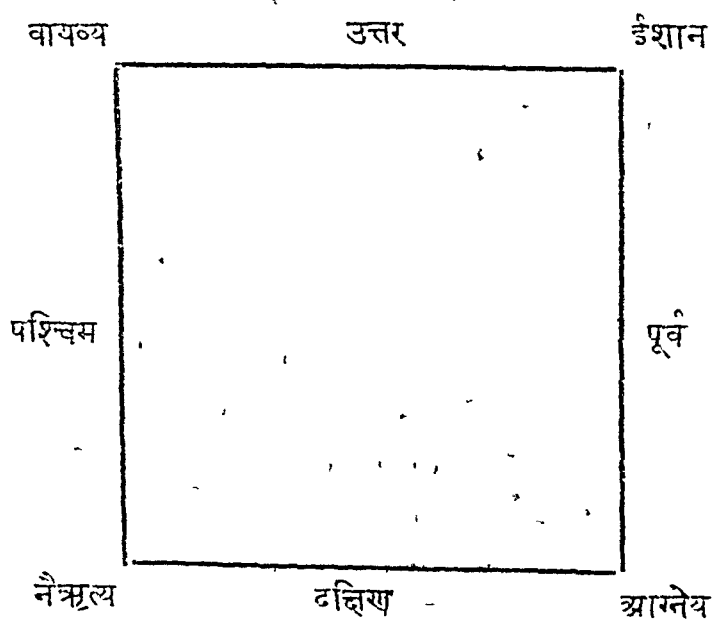
२ सत्यप्यात्मेन्द्रियार्थसान्निध्ये ज्ञान सुखादीनामभूतत्वोत्पत्ति दर्शनात् करणान्तरमनुमीयते ।

३ श्रोत्राद्य व्यापारे स्मृत्युत्पत्ति दर्शनात् बाह्येन्द्रियैरगृहीत सुखादि ग्राहकान्तर भावाच्च अन्तःकरणम्

४ तस्य गुणाः संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग परत्वापरत्व संस्काराः ।

५ प्रयत्न ज्ञानायौगपद्य वचनात् प्रतिशरीरमेकत्व सिद्धम् ।

६ पृथक्त्व मत एव

७ तदभाववचनात्-अणु परिमाणम् ।

८ अपसर्पणोपसर्पणवचनात् संयोगविभागौ

९ मूर्तत्वात् परत्वापरत्वे संस्कारश्च

१० अस्पर्शत्वात् द्रव्यानारम्भकं क्रियावत्त्वात् मूर्तत्वम्

११ साधारण विग्रहवत्त्वप्रसंगात् अज्ञत्वम्

१२ करणभावात् परार्थम्

१३ गुणवत्त्वाद् द्रव्यम्

१४ प्रयत्नादृष्ट परिगृहीतत्वाच्च आशुगामितेति ।

स्वरूपचिन्तन—सत्व-रज-तम इन तीन गुणोंकी साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। जब तक कोई विकृति नहीं तब तक यह प्रकृति है यही मूल प्रकृति है। इसके पश्चात प्रकृतिसे महत्तत्व हुआ। यह महत्तत्व बुद्धि स्वरूप है। महत्तत्वसे अहंकारकी उत्पत्ति हुई, जिससे मैं या मेराका भाव उत्पन्न होता है। वही अहंकार है। इसी अहंकारसे

मनकी उत्पत्ति हुई। मैं मेराका भाव विशेष कर मनके द्वारा ही उत्पन्न होता है। इसी अहंकारसे अन्य ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय भी हुई। इसलिये महत्तत्व, अहंकार और पंचतन्मात्रा ये सात प्रकृति भी हैं; क्योंकि प्रकृतिसे उत्पन्न हैं और विकृति भी हैं, क्योंकि उत्पत्तिके लिये विकृति आवश्यक है, अतएव विकृति भी है। मनसहित एकादश इन्द्रिया और पञ्चमहाभूत ये केवल विकृति हैं जो किसीकी न तो प्रकृति है और न विकृति हैं, वह केवल पुरुष है। जगतको उत्पन्न करने वाली प्रकृति कभी विकारको प्राप्त नहीं होती। जैसे रथमे रथी होता है उसी तरह इस शरीरका रथी आत्मा है। अथवा रेलगाडी मे जैसे गार्ड होता है उसीकी प्रेरणासे गाडीका सञ्चालन होता है। उसी तरह आत्मा है और उसकी प्रेरणासे गाडी चलाने वाला ड्राइवर होता है वह मन है। ड्राइवर जब तक एंजिनके कलपुर्जों से वाकिफ न हो और गाडी चलानेकी विद्या न जानता तो तब तक वह ड्राइवर नही हो सकता, उसी तरह मनको बुद्धिकी सहायता अपेक्षित होती है। मनका दूसरा नाम 'सत्व' है, अतएव अहंकारके सत्वगुणकी प्रधानतासे मनकी उत्पत्ति है। दशो इन्द्रिया भी सात्विक अहंकारसे होती हैं, अतएव उन दशोंके साथ मन ११ इन्द्रियोंमे है। पचतन्मात्राए तामस अहंकारसे होती हैं। मन सहित ग्यारहों इन्द्रियों और पचतन्मात्राओंकी प्रवृत्ति राजस अहंकारसे होती है। आत्मा का जो अनुमिति ज्ञानका साधन स्वरूप लिंग या चिन्ह है वही इन्द्रिय है, अतएव मन भी आत्मा के अनुमिति ज्ञानका साधन है। दशों इन्द्रियोंके और मनके धर्म एकसे होनेके कारण इसे भी इन्द्रियोंमें शामिल किया गया है।

उभयात्मकमत्रमनः, सङ्कल्प मिन्द्रिय च साधर्म्यात्
गुण परिणाम विशेषात्, नानात्व बाह्य भेदाश्च ॥

आत्मलिंग स्वरूप यह मन आत्मासे भी सम्बन्ध रखता है और

इन्द्रियोंने भी, इसलिये उभयात्मक है। यही नहीं बुद्धीन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों इस मनकी अध्यक्षतामें ही अपना अपना काम करती हैं। संकल्प इसका लक्षण है। आत्माकी प्रेरणासे किसी विषयमें प्रवृत्त होकर यह संकल्प-विकल्प द्वारा बुद्धि पूर्वक इस निश्चय पर आता है कि अमुक विषयका यह स्वरूप है। इस प्रकार पाच कर्मेन्द्रिय, पाच बुद्धिन्द्रिय और यह ग्यारवा मन संकल्पेन्द्रिय है। इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये हुए विषयोंको संकल्प विकल्प द्वारा उनका नाम गुण निश्चय करना मनका काम है। यह घट है, यह पट है, इस प्रकार अपने संकल्प द्वारा सजातीय और विजातीय द्रव्योंको मन ही अलग करता है। जैसे महत और अहकार ये दोनो असाधारण व्यापारसे युक्त हैं; उसी प्रकार मन भी अन्य इन्द्रियोंकी अपेक्षा असाधारण व्यापार युक्त साक्षात आत्मासे सम्बन्धित है। आत्मा रूपी चक्रवर्तीका यह वाइसराय-प्रतिनिधि बन कर दशो इन्द्रियोंका नियन्त्रण करता है। अतएव इसे इन्द्रिय माननेमें शास्त्रकारोंमे मत-भेद भी हैं। परन्तु अन्य इन्द्रियोंसे इसका साधर्म्य होनेके कारण इसे इन्द्रिय कहा गया है। इन्द्रिया अर्थ ग्रहण करती हैं, यह अर्थो का अर्थ बेठाता है; उनका निर्णय करता है। अर्थ विषय इसका भी है, अतएव सजातीयत्वके ख्यालसे इसे इन्द्रिय कहा गया है! सात्विक अहकारोपादानत्व धर्म भी समान है। जैसे सात्विक अहकार के उपादान कारणसे मनकी उत्पत्ति है, उसी प्रकार इन्द्रियोकी भी है। इसलिये सजातीयत्वके कारण यह भी इन्द्रिय है। महत और अहकार भी आत्माके चिन्ह हैं और मन भी आत्माका चिन्ह है। किन्तु महत और अहकारका अर्थ ग्रहणसे सम्बन्ध न होनेके कारण उन्हें इन्द्रिय नही कह सकते। गुणोंके परिणाम भिन्न भिन्न होनेके कारण बाह्य भेदके कारण इन्द्रियोकी भेद कल्पना अलग अलग हो गयी। इस शरीर रूपी राज्यका संचालन करनेके लिये दश इन्द्रियरूप

१० मन्त्रियोके जिम्मे एक एक विभाग दे दिये गये और मन उन सबों मे प्रधान मन्त्री है। जिसका सम्बन्ध मन्त्रियोके कार्य सञ्चालनमे सहायता पहुँचाना और निर्णयात्मक परिणाममे पहुँचना तथा उधर आत्मारूपी चक्रवर्तीसे भी सम्बन्ध स्थापित रखना भी है। यह हुआ मनका स्वरूप चिन्तन।

मनका लक्षण

"मन्यते अनेन इति मनः" जिसके द्वारा मनन किया जाय् अर्थात् जो मनन अर्थात सोचने विचारनेका साधन हो वही मन है। यह पहले ही हम बतला चुके हैं कि इन्द्रियोके ग्रहण किये हुए विषयों का मनन कर यह निश्चय करना कि यह अमुक वस्तु है, अमुक नहीं है, इसका यही नाम स्वरूप है, यह मनके द्वारा होता है। अतएव यही मनका लक्षण है। इन्द्रियोके ग्रहण किये हुए विषयोका निर्णय कर आत्मा को निर्णयकी सूचना देना मनके जिम्मे है। सुख दुःखादि आत्माके धर्म है और उनका अनुभव करना मनका धर्म है। इसीलिये कहा गया है **"मनः सर्वेन्द्रियप्रवर्तकम् आन्तरेन्द्रियम्, स्वसयोगेन वाह्येन्द्रियानुग्राहकम्, अतएव सर्वोपलब्धि कारणम्। तर्कभाषा।"** मन सब इन्द्रियोका प्रवर्तक है। वाह्येन्द्रियोके गृहीत विषयोका आत्मसयोगसे सर्व विषयोकी उपलब्धिका कारण है। तर्कदीपिकामे मनका लक्षण यो बतलाया गया है।

मनसो लक्षणं च स्पर्शरहितत्वे सति क्रियावत्वम्।

अर्थात यद्यपि मन अदृश्य है, हम स्पर्श द्वारा उसकी सत्ताका ज्ञान प्राप्त नही कर सकते तौ भी अदृश्य रूपसे सब प्रकारकी क्रिया करनेमे वह समर्थ है। वैशेषिक सूत्रमे मनका लक्षण बतलाते हुए लिखा है।

आत्मेन्द्रियार्थ सन्निकर्षे ज्ञानस्य भावेऽभावश्च मनसो-लिंगम्। ३ अ० २ आ० १ सू०।

इसमें लक्षण और भी स्पष्ट किया है। अर्थात आत्मा, इन्द्रिय और विषय इन तीनोंके रहते हुए भी कभी कभी ज्ञान होता है और कभी नहीं होता। कारण यही है कि जब मन उन विषयोंके प्रति आकर्षित होता है तभी ज्ञान होता है। यदि मनका ध्यान इन्द्रिय-ग्राह्य विषयकी ओर न हो तो इन्द्रियोंके ग्रहण किये हुए विषयका यथार्थ ज्ञान आत्माको नहीं होता। अर्थात प्रत्यक्ष ज्ञानके लिये आत्मा और इन्द्रिय ही नहीं मनका इन्द्रिय सन्निकृष्ट होना भी आवश्यक है। आत्माको ज्ञानोत्पादन करानेमें साधन मन ही है। बहुतसे ज्ञान ऐसे हैं जो इन्द्रियोंके द्वारा उत्पन्न नहीं होते। स्मृति ज्ञानके लिये बाह्येन्द्रियोंकी आवश्यकता नहीं पड़ती। अन्धे बिना देखे भी सुनकर सोच सकते हैं, पहलेकी देखी हुई बातका अनुभव कर सकते हैं। कान द्वारा सुन न सकने पर भी देखी हुई बातका विचार किया जा सकता है। स्मृति ज्ञानके सम्बन्धमें बाह्येन्द्रियोंका कोई उपयोग नहीं, यह काम अन्तःकरणका ही है।

श्रोत्राद्यव्यापारे स्मृत्युत्पत्ति दर्शनात् बाह्येन्द्रियैरगृहीत सुखादि ग्राह्यान्तर भावाच्च अन्तःकरणम्। प्रशस्तपाद।

अतएव मनकी प्रधानता स्पष्ट है। आयुर्वेदमें भी मनका लक्षण ज्ञानका भाव और अभाव दोनों बतलाया गया है।

लक्षणमनसो ज्ञानस्याभावो भाव एव वा। चरक शरीर १

यदि मन इन्द्रियोंके विषयोंमें तन्मय हो, आकर्षित हो तो ज्ञान का भाव होगा और यदि मनका ध्यान उधर न हो तो इन्द्रियोंके अर्थ ग्रहण करने पर भी विषय ज्ञान नहीं होगा। मनके सम्बन्धमें दो प्रकार के लक्षण कहे गये हैं। एक ज्ञान होना दूसरे न होना। जब तक आत्मा-मन और इन्द्रिया एक साथ किसी पदार्थके ज्ञानके लिये संयोग स्थापित न करें तब तक केवल सन्निकर्ष अर्थात सान्निध्यसे

काम न चलेगा। सबका सन्निकर्ष हो, परन्तु मनका सन्निकर्ष न हो तो सब इन्द्रिय ग्रहण व्यर्थ है। मान लीजिये एक साथ कई बातें हो रही हैं, नेत्र देख रहे हैं, घ्राण आघ्राण कर रहा है और कान सुन रहे हैं, किन्तु मनका सन्निकर्ष जिस इन्द्रियकी ओर होगा उसीके सम्बन्धका ज्ञान सम्पादित होगा। यदि मन कर्णकी ओर आकर्षित है तो सुनी हुई बातका ज्ञान होगा; और नेत्र और घ्राणके विषयका ज्ञान नहीं होगा। इसी तरह यदि मनका सन्निकर्ष चक्षुकी ओर है तो दर्शन द्वारा उपलब्ध ज्ञान प्राप्त होगा। अन्य नहीं। इस प्रकार नेत्रके ज्ञानका भाव और कर्णके या घ्राणके ज्ञानका अभाव होगा। जब मन श्रवणकी ओर होगा तब श्रवण ज्ञानका भाव और दर्शन तथा आघ्राण ज्ञानका अभाव रहेगा। जब मनका ध्यान आघ्राणकी ओर होगा तब आघ्राणका ज्ञान होगा कर्ण और दर्शन सम्बन्धी ज्ञानका अभाव रहेगा।

परिभाषा—मनकी परिभाषा होगी कि जो आत्मा और इन्द्रियों का सन्निकर्ष लाभ कर सुख दुःखादि विषयोंका ज्ञान उपलब्ध करने का साधन इन्द्रिय है उसे मन कहते है।

सुखाद्युपलब्धि साधनमिन्द्रियं मनः। तर्क संग्रह

विश्वनाथ तर्क पञ्चानन मनकी परिभाषामें कहते हैं कि जो सुख दु.खादिका साक्षात्कार करनेका करण है उसे मन कहते हैं। ऊपर साधन शब्द आया है इसमें करण शब्दका प्रयोग हुआ है। दोनोंका भाव एक ही है जिसके द्वारा कर्ता कार्य करता है उसे करण कहते है। साधनमें भी जरिया करणका ही होता है। ऊपर एक जगह लक्षणमें मनके लिये अन्तःकरण शब्दका प्रयोग हुआ है। अन्तः माने भीतर करण माने कार्यका साधन। भीतरी ज्ञानकी उपलब्धिका साधन होनेके कारण मनको अन्तःकरण कहते हैं। सांख्य-

तत्त्व कौमुदीकारके मतमें महत्तत्त्व, अहंकार और मन मिला कर अन्तःकरण होता है और इन्हीं अन्तःकरणत्रयकी वृत्ति अर्थात व्यापार उनका लक्षण कहा गया है। इनमेंसे महत् अर्थात बुद्धिका अध्यवसाय उनका असाधारण लक्षण है, अहंकारका अभिमान और मनका संकल्प उनकी वृत्तिका असाधारण लक्षण है। प्राणादि वायु पंच इनकी सामान्य या साधारण वृत्ति हैं। अर्थात यह वृत्ति तीनो में समान रूपसे रहती है। किन्तु अध्यवसाय केवल बुद्धिमे, अभिमान केवल अहंकारमे और संकल्प केवल मनमें रहता है। इसलिये ये इनके असाधारण व्यापार हैं। इन तीनोंके करणोंके जीवनमें प्राणादि वायु कारण है। **प्राणवायु** का व्यापार नासाका अग्र भाग हृदय, नाभि, पावका अंगूठा, गर्दन, पीठ, पाव, वायु, उपस्थ और कोख है। **समानवायु** का व्यापार हृदय, नाभि और सन्धियोंमें होता है, **उदानवायु**का व्यापार हृदय, कण्ठ, तालु, मूर्धा और भृकुटीमे होता है। **व्यानवायु** का सब त्वचामें व्यापार होता है। अपान वायुका व्यापार मल स्थान और वस्तिमें होता है। इनकी असाधारण वृत्तिया अलग अलग कालमें उत्पन्न होती हैं, और कभी कभी एक साथ ही उत्पन्न होती हैं। एक प्रकारसे अन्तःकरण-चतुष्ठ भी कहा जाता है १ इन्द्रिययुक्त मन अर्थात इन्द्रिय विशिष्ट मन २ केवल अर्थात इन्द्रियरहित मन ३ अहकार ४ बुद्धि। इनका क्रमसे आलोचन, संकल्प, अभिमान और अध्यवसाय ये चार वृत्ति या व्यापार हैं। जो हो, बाह्य इन्द्रिय ग्राह्य विषय मनके प्रत्यक्ष ज्ञान मे सहायक कारण होता है। आन्तरिक प्रत्यक्ष ज्ञान सुख दु:खादिके अनुभव प्रधान कारण होता है।

स्वरूपपरिचय—मन इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है। इसलिये मनत्व जातिको भी अतीन्द्रिय जानना चाहिये। इन्द्रिया विषय ग्रहण करती

हैं, आत्मा साक्षी है। आत्माका इन्द्रियोसे सन्निकर्ष होने पर भी कभी ज्ञानकी उपलब्धि नही होती। इस लिये इन्द्रिया ज्ञान उपलब्धिके लिये न तो अकेले समर्थ हें और न आत्माके सन्निकर्षसे विषय ग्रहणका कारण होते हुए भी ज्ञान प्राप्तिका कारण हैं। ज्ञान कभी होता है कभी नही होता। इससे स्पष्ट है कि इन इन्द्रियो और आत्माके अतिरिक्त और भी एक इन्द्रिय है जो इन दोनोके बीचमें रह कर ज्ञानकी उपलब्धिमें सहायक होती है; वह इन्द्रिय यही मन है। सतपदार्थीमें लिखा है।

मनस्त्व जातियोगि स्पर्शशून्यं क्रियाधिकरण मनः

मन स्पर्श शून्य और क्रियाधिकरण है। अतएव आत्मा और इन्द्रियोके अतिरिक्त मनका पृथक निर्देश हो जाता है। स्पर्श आदि का काम वाह्येन्द्रियोका है। स्पर्श शून्य कहनेसे इन्द्रिया मनसे अलग की जाती हे और क्रियाधिकरण कहनेसे अदृश्य द्रव्य आकाश आदि छुट जाते हैं: क्योकि उनमें क्रियाधिकरण नही हैं। वे निष्क्रिय हैं। अतएव अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष भी नही रहता। मै सुखी हू, मैं दुःखी हू, इससे मालूम पडता है कि इन इन्द्रियोके अतिरिक्त और भी कोई अन्दर है, जो सुख दुःखका और आत्म तथा परका अनुभव कर रहा है। अतएव बहिरिन्द्रियोंके अतिरिक्त यह अन्तःकरण रूपी मन अलग इन्द्रिय सिद्ध होता है। अनेक इन्द्रियां एक साथ अर्थ ग्रहण कर रही हैं; किन्तु उन्हे एक साथ ज्ञानकी उपलब्धि नही होती, इससे सिद्ध है कि ज्ञान उपलब्ध करने वाला और कोई हे और वह एक है क्योकि ऐसा न होता तो इन्द्रियोको एक साथ ज्ञानकी उपलब्धि होती। वह मन ही है जो विषय ज्ञानकी उपलब्धि कर वारी वारीसे आत्माके समक्ष उपस्थित करता है। यही मन है।

यदि यह भी मान ले कि वाह्य ज्ञानके लिये वाह्य इन्द्रियां हैं तो भी अन्तर ज्ञानकी उपलब्धिके लिये भी तो कोई ऐसी इन्द्रिय की

आवश्यकता है जो अन्तरमें रह कर अन्तरज्ञान प्राप्त कर सके। स्मृति ज्ञान बाह्य इन्द्रियोंका विषय नहीं है। स्मृति आभ्यन्तर विषय है, पूर्वानुभूत विषयोंका स्मरण और वर्तमान सुख दुःखादिका साक्षात्कार जिस इन्द्रियसे होता है वही मन है।

मनका अवयवत्व—मन अदृश्य, और अस्पृश्य और फिर भी उसका अस्तित्व है; तो फिर इस जटिल समस्याका हल क्या है? मन है किन्तु इतने सूक्ष्म परमाणुमें है कि आखोंसे देखा नहीं जा सकता। जो वस्तु जन्मती है, उसकी अपनेमें ही वृद्धि होती है, ह्रास होता है, परिवर्तन होता है और विनाश भी होता है, इस प्रकारके परिणामको दर्शनशास्त्र में भावविकार कहते हैं। आत्माके सिवाय अन्य कोई जायमान वस्तु विकारहीन नहीं होती। मनका भी जन्म है, अतएव मन भी भावविकार ग्रस्त है। तुच्छ वस्तुसे लेकर ब्रह्मा तकका एक मात्र परीक्षक मन है; किन्तु मनका परीक्षक कौन है? यदि कहा जाय कि उसका परीक्षक वह स्वयं है, जैसे दीपकका प्रकाशक दीपक। बाह्य इन्द्रिया तो जैसा प्रत्यक्ष करती हैं वैसा ही रूप ग्रहण करती हैं। अतः उनके बूतेका तो वह नहीं कि मनको प्रत्यक्ष कर बतावे। यदि आत्मा और मनके विषयमें चिन्ता की जाय तो रास्ता निकल ही सकता है। कुछ लोग आत्मा और मनको एक कहते हैं; किन्तु वे भी दोनो का विचार करते समय दोनोको अलग अलग मान कर ही विचार करते हैं। विचारमे समर्थन होने पर दोनोको एक कह देते है। आत्मा और मनकी घनिष्ठता ऐसी है कि इस प्रकारका धोखा होना आश्चर्य नहीं है। कपिल स्पष्ट कहते हैं कि मन देहकी ही एक वस्तु है। मन देहाश्रित पदार्थ है अवश्य, किन्तु अस्थि मासके समान नहीं है। मन अह द्रव्यका परिणाम विशेष है, उत्पन्न होने पर भी एक क्षणमें ध्वस होने वाला नहीं है। जब तक तत्व ज्ञान न हो जाय तब तक उसका

स्थायित्व है। मनुष्यके मरने पर मन शरीरसे भिन्न हो जाता है। शरीरका विनाश नामक विकार होता है किन्तु मनका विनाश विकार नहीं होता। जन्मान्तर ग्रहण कर मन दूसरे शरीरका आश्रय लेता है।

नैयायिक कहते हैं कि मन निरवयव और नित्य है। उनके मत मे निरवयव होनेके कारण उसका जन्म भी नहीं होता। अतएव उसका उपचय और अपचय भी नहीं होता है। आहार-विहार मे जो मनकी ह्रास-वृद्धिका बोध होता है, वह मनका नहीं उसके गोलक अर्थात अवस्थिति स्थान की है। गोलककी ह्रासवृद्धि मनकी ह्रास वृद्धि मालूम पड़ती है। बाल्यावस्थामे इन्द्रियोंकी पुष्टि न होनेके कारण इन्द्रिय शक्तिमे भी अल्पता रहती है। यौवन कालमे उन स्थानोंकी पुष्टिके कारण इन्द्रियोंकी स्थिति भी पुष्ट रहती है, वही बुढापेमे ह्रासको प्राप्त हो जाती है। अवयव विभागके ध्वसके साथ इन्द्रियोका ध्वस हो जाता है। मन निरवयव है अतएव उसका ध्वस नहीं होता। किन्तु यह स्थिर सिद्धान्त है कि जिसमे गुण धर्म होगा वह द्रव्य होगा, चाहे द्रव्य सावयव हो चाहे निरवयव हो।

मन सूक्ष्म है और वायवीय परमाणुओके तुल्य है। तभी तो अर्जुनने इसे "वायोरिव सुदुष्करम्" कहा है। ऐसा सूक्ष्म मन एक साथ एक समयमे एकसे अधिक वस्तुका ग्रहण नहीं कर सकता। अतएव एक समयमे उसे एकसे अधिक वस्तुका ज्ञान नहीं होता। एक ओर मन रहनेसे दूसरी ओर उसकी उदासीनता प्रतीत होती है। इसका यही कारण है कि वह परमाणु तुल्य है। स्थूल और सावयव वस्तु दो से अधिक वस्तुसे संयोग प्राप्त कर सकती है। क्योंकि उनके अनेक प्रदेश हाथ पाव आदि हैं। किन्तु मन इतना सूक्ष्म है कि एक के साथ संयुक्त होने पर भी वह एक विषयमे इतना निमग्न हो जाता है कि एकसे अधिकका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। खानेके समय मालूम

पड़ता है कि हम एक साथ कई काम कर रहे हैं; किन्तु उसमें भी सब काम एक एक करके ही होते हैं। जैसे एक कमलके कई दलके फूलमें सुई चुभावें तो मालूम पड़ता है कि यह सब पखुरियोंमें एक साथ सुई घुस गयीं: किन्तु यथार्थमें वह प्रत्येक पखुरीमें क्रमशः जाती है।

नैयायिक कुछ भी कहें: किन्तु सांख्यका मत है कि मन अग्नि स्वरूप है, वह अग्निसे उत्पन्न होता है किन्तु घट-पट आदिके समान क्षणिक नहीं है। मनका अस्तित्व तब तक रहता है जब तक जीवका लोप न हो, उसका मोक्ष न हो जाय। सूक्ष्म होने पर भी मन सावयव है। अणु परिमाण ही सही, किन्तु अणुकी कोई सत्ता तो है? यदि निरवयव होता तो किसी के साथ संयुक्त नहीं हो सकता था। मनकी ह्रास-वृद्धि नहीं होती, उसके स्थानकी ही ह्रासवृद्धि होती है, यह कथन प्रमाण और युक्ति अनुकूल नहीं। वायु इन्द्रिय अगोचर है; किन्तु उसमें अवयव तो है ही। वह भी पञ्चीभूत परमाणु प्रवाह रूप है। इन्द्रिय ज्ञान कभी क्रम से होता है कभी शीघ्रता पूर्वक एक साथ भी होता है। कभी क्रमसे होता है कभी शीघ्रता पूर्वक एक साथ भी होता है। कभी क्रमसे कभी कभी अक्रमसे। प्रधान आप्त वाक्य वेदोंका कथन है कि मन सावयव है; अतएव सांख्यके मतसे मन सावयव है। छान्दोग्य उपनिषद में उद्दालकने सेतुकेतुसे कहा कि "अन्नमय हि सौम्य मनः, आपोमयः प्राणः, तेजोमयी वाक्" मन अन्नमय है उसपर खाद्यका परिणाम होता है। अब किस प्रकार खाद्यका पचन और उसके द्वारा पोषण होता है, वह आयुर्वेदका विषय है। श्वेतकेतुको १५ दिन उपवास करना पड़ा। तब उद्दालकने पूछा सब वेदोंका तुमने अध्ययन तो किया है? श्वेतकेतु ने उत्तर दिया कि आज मुझे कुछ स्मरण नहीं हो रहा है। ऋषिने कहा "जिस प्रकार काष्ठके अभावसे महत् परिमाण अग्नि भी निर्वाणको प्राप्त होता है, किन्तु बुझते हुए अग्नि में लकड़ी डाल देनेसे वह प्रज्वलित हो जाता है, इसी प्रकार आहार

विना तुम्हारी इन्द्रिया और मन क्षीण हो गया है। वह आहारसे फिर प्रज्वलित और सतेज होगे, उस समय सब बाते तुम्हे स्मरण हो आवेगी। इससे स्पष्ट है कि आहारका असर तनके साथ मन पर भी पडता है; अतएव मन सावयव है।

अब मनका स्थान कहा है यह प्रश्न है। पुराणोमे मनका स्थान भ्रू युगलके मध्य भीतर है। देह व्यापिनी अनन्त नाडियोमे से प्रधान तीन नाडी है, उनका नाम इडा, पिंगला और सुषुम्ना है। वह तीनों नाडिया नाभि-स्थान्तरसे हृत्पिण्डसे उत्पन्न होकर मूलाधारमे आती है। वहासे त्रिधारा रूपमे तीन दिशामे दोनों अगल बगल होकर अर्थात् मेरुदण्डका आश्रयकर मस्तक पर्यन्त अवस्थित है। इन तीन प्रधान नाडियोकी कई सौ शाखा नाडिया है। उनकी अनेक शाखा प्रशाखाए है। इस प्रकार शिरारूप वे सारे शरीरमे व्याप्त है, जिस प्रकार पीपलका पत्ता यदि कुछ सड जाय, और उसके ऊपरका हरा भाग निकल जाय तो मालूम पडेगा कि उसमे ताने बानेके समान तन्तु जाल बिछा रहता है। इसी प्रकार हमारे शरीरमे भी तन्तुओका जाल है। उक्त त्रिनाडियोके मध्य कमलनालके समान तन्तुओके सूक्ष्म स्नेहमय तन्तु गुच्छाकार है। आश्रयीभूत शिराओके साथ वे स्नेह तन्तु ब्रह्मरन्ध्रके नीचे जाकर स्थगित हुए है। जहा पर वह स्नेहमय तन्तु गुच्छ स्थगित हुआ है वह स्थान गाठदार हो गया है। वह मस्तिष्कमे तथा मस्तकघृतमे डूबा हुआ है। इस तन्तुग्रन्थिका जो वृन्तभाग है, वही आज्ञा चक्र और उसके ऊपरका भाग सहस्रार चक्र है। मन इसी आज्ञा चक्रमे वास करता हुआ अपना काम करता है। मन जब चिन्ता कार्यमे प्रवृत्त होता है तब मस्तिष्कके सभी नाडीमण्डल स्पन्दित होते है और आख, मुह, भ्रूमे विकृति और कुटिलता आ जाती है। किसी किसीके मतमे हृदयमे जो अपूपाकार मासखण्ड है, जिसे हृदयपद्म

कहते हैं उसी मास खण्डका उदराकाश ही मनका आवास है। क्योंकि मन जो कुछ ध्यान या चिन्ता करता है वह हृदयमे रख कर ही करता है। मनकी ध्येय वस्तु सब हृदयाकाशमे ही प्रतिबिम्बित और विस्तृत होती हैं। जो हो, हृदयका भी एक मत है और मस्तिष्क का भी। एक मत यह भी है कि मस्तिष्क भी ऊर्ध्व हृदय है अतएव मस्तिष्क ही मनका स्थान है।

इतिशम्।